भक्त–बाणी टीका–२

बाणी भक्त रविदास जी टीका

टीकाकार :

प्रो. साहिब सिंघ

भक्त-बाणी टीका २

बाणी भक्त रविदास जी
टीका

भक्त-बाणी टीका २

बाणी भक्त रविदास जी

टीका

रविदासु चमारु उसतति करे, हरि कीरति निमख इक गाइ॥
पतित जाति उतमु भइआ, चारि वरन पए पगि आइ॥२॥
(सूही महला ४)

टीकाकार :
प्रोफ़ैसर साहिब सिंघ

सिंघ ब्रदर्ज़
अमृतसर

बाणी भक्त रविदास जी टीका

टीकाकार :

प्रोफ़ैसर साहिब सिंघ

अनुवादक :

डा. परमजीत कौर

गुरु नानक गर्ल्ज़ कालिज, यमुनानगर

ISBN 81-7205-366-5

प्रथम संस्करण अगस्त 2006

द्वितीय संस्करण जुलाई 2014

मूल्य : 70–00 रुपये

प्रकाशक :

सिंघ ब्रदर्ज़

•

बाज़ार माई सेवां, अमृतसर – 143 006

•

S.C.O. 223–24, सिटी सैंटर, अमृतसर – 143 001

E-mail : singhbro@vsnl.com

Website : www.singhbrothers.com

प्रिंटर :

प्रिंटवैल्ल, 146, इंडस्ट्रीयल फ़ोकल पुआइंट, अमृतसर

विषय-सूची

हिन्दी अनुवाद के सम्बन्ध में ९
भक्त-बाणी कैसे दर्ज हुई ? ११
समूह विचार का परिणाम २३
भक्त रविदास जी का इष्ट २५
भक्त रविदास जी की बाणी पर की गई आपत्तियों पर विचार ४४

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के १६ रागों में भक्त रविदास जी के ४० शब्दों का विवरण

१. सिरी रागु

१. तोही मोही, मोही तोही ५१

२. रागु गउड़ी

२. मेरी संगति पोच ५३
३. बेगमपुरा सहर को नाउ ५४
४. घट अवघट डूगर घणा ५६
५. कूपु भरिओ जैसे दादिरा ५८
६. सतजुगि सतु, तेता जगी ६०

३. आसा

७. म्रिग मीन भ्रिंग पतंग कुंचर ६८
८. संत तुझी तनु, संगति प्रान ७०
९. तुम चंदन हम इरंड बापुरे ७१
१०. कहा भइओ, जउ तनु भइओ ७३

११. हरि हरि, हरि हरि, हरि हरि हरे ७४
१२. माटी को पुतरा, कैसे नचतु है ७६

४. गूजरी

१३. दूधु त बछरै थनहु बिटारिओ ७८

५. सोरठि

१४. जब हम होते, तब तू नाही ८०
१५. जउ हम बांधे मोह फास ८२
१६. दुलभु जनमु पुंन फल पाइओ ८४
१७. सुखसागरु सुरतर चिंतामनि ८६
१८. जउ तुम गिरिवर, तउ हम मोरा ८८
१९. जल की भीति, पवन का थंभा ८९
२०. चमरटा गांठि न जनई ९१

६. धनासरी

२१. हम सरि दीनु, दइआलु न तुम सरि ९४
२२. चित सिमरनु करउ, नैन अविलोकनो ९५
२३. नामु तेरो आरती मजनु मुरारे ९६

७. जैतसरी

२४. नाथ कछूअ न जानउ १००

८. रागु सूही

२५. सह की सार सुहागनि जानै १०३
२६. जो दिन आवहि, सो दिन जाही १०५
२७. ऊचे मंदर साल रसोई १०७

९. बिलावलु

२८. दारिदु देखि सभु को हसै १०९
२९. जिह कुल साधु बैसनौ होइ ११०

१०. रागु गोंड

३०. मुकंद मुकंद जपहु संसारु ११३
३१. जे ओहु अठसठि तीरथ न्हावै ११५

११. रामकली

३२. पड़ीऐ गुनीऐ नामु सभु सुनीऐ ११८

१२. रागु मारू

३३. ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै १२०
३४. सुखसागर सुरितरु चिंतामनि १२१

१३. रागु केदारा

३५. खटु करम कुल संजुगतु है १२३

१४. भैरउ

३६. बिनु देखे उपजै नही आसा १२६

१५. बसंतु

३७. तुझहि सुझंता कछू नाहि १३२

१६. मलार

३८. नागर जनां, मेरी जाति बिखिआत १३५
३९. हरि जपत तेऊ जनां पदम १३७
४०. मिलत पिआरो प्राननाथु, कवन भगति ते १४२

हिन्दी अनुवाद के सम्बन्ध में

प्रो. साहिब सिंघ जैसे विद्वान द्वारा लिखित *भक्त बाणी टीका* का हिन्दी में अनुवाद करने का अवसर मुझे मिला, यह मेरा सौभाग्य है। इसी कड़ी में *बाणी भक्त रविदास जी* का हिन्दी अनुवाद उपस्थित है। मेरा भरसक प्रयास रहा है कि अर्थों तथा भावों के स्पष्टीकरण तथा प्रकटीकरण में थोड़ा-सा भी अन्तर न रहे। इसी प्रयास में कहीं-कहीं पंजाबी के कुछ शब्दों जैसे बाणी, बरकत, खुआर, सांझा, सिमरन, साखी, किरत-कार, बख़्शिश, सिफ़ति-सालाह आदि का प्रयोग ज्यों का त्यों किया गया है। आशा है पाठकों को पंजाबी में लिखित तथा हिन्दी में अनुवाद किये गए टीका में कोई अन्तर महसूस नहीं होगा। मैं 'सिंघ ब्रदर्ज़' की आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य के योग्य समझा।

गुरु नानक गर्ल्ज़ कालिज,
यमुनानगर

डा. परमजीत कौर

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में भक्त-बाणी कैसे दर्ज हुई ?

अश्रद्धा-जनक विचार

गुरुबाणी के कई टीकाकार विद्वानों ने भक्त-बाणी के बारे में ऐसे अजीब अजीब बिचार प्रकट करने प्रारम्भ किये हुए थे, जिनको मानने के लिए बुद्धि पर बहुत दबाव डालना पड़ता था। सभी श्रद्धालु ऐसे नहीं हो सकते जो प्रत्येक बात को मानते चले जाएं। श्रद्धावानों की यह श्रद्धा भी है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब हमारा गुरु है, दीन दुनिया में हमें राह दिखाने वाला है। इसमें प्रत्येक शब्द ऐसा है जो हमारे रोज़ाना-जीवन के अनुकूल है। पर जब इन विद्वान् टीकाकारों के विचार पढ़े जाते हैं तो बुद्धि शंकायों में पड़ जाती है। पण्डित तारा सिंघ जी कौम के बहुत प्रसिद्ध विद्वान् माने जाते हैं। वे यह लिख गये हैं कि भक्तों की समूह बाणी का उच्चारण गुरु अर्जुन देव जी ने भक्तों के नाम पर स्वयं ही किया है। भोलेपन में कितना बड़ा दोष लगाया गया है गुरु पातिशाह पर! भोले से भोला लेखक भी यह जानता है कि यह अपराध है पर पण्डित जी की इस मान्यता को बाणी की आन्तरिक गवाही ने ही झुठला दिया है। कबीर जी तथा फ़रीद जी के कई श्लोक ऐसे हैं जो गुरु अमरदास जी के पास मौजूद थे तथा जिनके साथ तीसरे पातिशाह जी ने अपनी तरफ़ से कुछ मिलते-जुलते विचार प्रस्तुत किये थे। पण्डित तारा सिंघ जी के बाद कई अन्य विद्वानों ने भी भक्तों के कई शब्दों के बारे में ऐसे विचार लिख दिये हैं जो श्रद्धावान की श्रद्धा पर बहुत भारी चोट करते हैं। नामदेव जी के कई शब्द मूर्ति-पूजा के पक्ष में हैं, कबीर जी के कई शब्द प्राणायाम तथा योगाभ्यास के पक्ष में हैं, फ़रीद जी के कई श्लोक बताते हैं कि बाबा जी उल्टे लटककर तप करते थे तथा वह अपने पास

पोटली में काठ की रोटी रखते थे। इन विद्वानों द्वारा ऐसी विद्वतापूर्ण बातें लिखी जानी कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को पूर्ण त्रुटि रहित गुरु मानने वाले सिक्खों की श्रद्धा को इन विद्वानों ने तोड़कर रख दिया। यहाँ ही बस नहीं की गई। भक्तों के कई शब्दों के साथ ऐसी-ऐसी साखियाँ जोड़ी गई हैं, जो मानव जीवन की राह में कोई समुचित डगर नहीं दिखा सकतीं। इन विद्वानों ने ऐसी लकीर खींच दी है कि इन साखियों से स्वतन्त्र होकर पाठक सज्जन इन शब्दों को पढ़ना-विचारना भूल गये हैं। पढ़ते भी हैं और डोलते भी हैं। कबीर जी का अपनी पत्नी के साथ क्रुद्ध हो जाना, नामदेव जी का बेगार करते पकड़े जाना—ये दो उनमें से प्रसिद्ध साखियाँ हैं।

इनका प्रभाव

यह अश्रद्धाजनक-विचार तथा जीवन के साथ बेमेल ये साखियाँ आख़िर अपना प्रभाव दिखाने लगीं। पहले भक्त-बाणी के विरुद्ध अन्दर ही अन्दर काना-फूसी होती रही है तथा अब खुल्लमखुल्ला इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई जा रही है तथा कहा जा रहा है कि भक्तों की बाणी गुरु अर्जुन देव जी की शहीदी के बाद गुरु ग्रन्थ साहिब में दर्ज की गई थी। ऐसे सज्जनों की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। गुरु नानक पातिशाह के नाम लेने वाले जो सिक्ख श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को सत्य में अपना गुरु मानते हैं, उनकी यह श्रद्धा है तथा होनी भी चाहिए कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का प्रत्येक शब्द हमारे जीवन-मार्ग में प्रकाश का काम करता है। गुरु नानक देव जी ने स्वयं भी कहा है :

गुर वाकु निरमलु सदा चानण, नित साचु तीरथु मजना॥

(धनासरी छंत म: १)

पर यदि गुरु ग्रन्थ साहिब में कोई ऐसा शब्द भी मौजूद है जो मूर्ति-पूजा, प्राणायाम, योगाभ्यास की प्रशंसा करता है, तो क्या हमने भी ये सभी कार्य करने हैं ? यदि नहीं करने तो ये शब्द यहाँ दर्ज क्यों हुए ? पर सबसे

बड़ी बात यह है कि यदि ये शब्द मूर्ति-पूजा आदि के पक्ष में हैं तथा यदि इनको गुरु अर्जुन देव जी ने स्वयं ही दर्ज किया था, तो दर्ज करते समय उन्होंने सिक्खों को सचेत करने के लिए यह क्यों न लिख दिया कि ये शब्द सिक्खों के लिए नहीं हैं ? बेमेल साखियों के बारे में भी वही अड़चन है। घर में किसी कारण से कबीर जी अपनी पत्नी पर क्रुद्ध हो गये, पत्नी ने मनाने के लिए बहुत बिनती की पर कबीर जी ने फिर भी यही उत्तर दिया :

कहतु कबीर सुनहु रे लोई॥ अब तुमरी परतीति न होई॥ *(आसा)*

कौन-सा घर है जहाँ कभी न कभी पति-पत्नी में छोटे-मोटे झगड़े तथा नाराज़गी नहीं हो जाती ? पंजाबी कहावत है कि घर में बर्तन भी टकरा जाते हैं। पर क्या कबीर जी के शब्द से यह शिक्षा मिलती है कि यदि कभी पत्नी के साथ किसी बात पर थोड़ी-सी अनबन हो जाए तो उसको यह कहना है कि–'अब तुमरी परतीति न होई' ? यदि नहीं तो क्या यह शब्द सिर्फ़ पढ़ने के लिए ही है?

नया पक्ष

गुरु ग्रन्थ साहिब तथा गुरु में पूरी श्रद्धा रखने के इच्छुक सिक्खों के सामने ऐसी कई बाधाएं उपस्थित होती गई। ठोकरें लगने लगी, अन्त में कुछ सज्जन इस टिकाने पर आ पहुँचे कि भक्त-बाणी गुरु अर्जुन देव जी के बाद दर्ज हुई थी। इस टेक से उन सज्जनों को यह सांत्वना तो मिल गई कि वे जिस बाणी को गुरु मान रहे हैं वह त्रुटि रहित है, उसमें कोई कमी नहीं, उसमें कहीं कोई विरोध नहीं, उसका प्रत्येक शब्द मानव जीवन के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम करता है तथा कर सकता है।

नई साखी

पर इस विचार पर दृढ़ रहना भी कोई आसान काम नहीं था। एक अन्य अड़चन सामने आ गई। गुरु अर्जुन साहिब के बाद भक्त-बाणी किसने दर्ज कर ली ? कैसे दर्ज कर ली ? गुरु ग्रन्थ साहिब की बीड़ श्री हरिमन्दर

साहिब में से कैसे ले जायी गई ? किसी ऐतिहासिक साखी की ज़रूरत थी, तथा ऐसा प्रतीत होता है कि यह कमी भी एक नयी बनाई हुई साखी द्वारा पूरी कर ली गई है। भक्त-बाणी के विरोधी एक सज्जन लिखते हैं :

''पंचम गुरु जी शहीद हो गए तथा 'पोथी साहिब' को शाही हुक्म के अनुसार ज़ब्त (कानून विरोधी) करार दिया गया। पोथी साहिब का पढ़ना (पाठ) तथा प्रचार करना गुनाह ठहरा दिया गया। प्रिथीचन्द तथा इसके साथी अथवा गुरु-घर से निष्कासित (छेके हुए) चाहते भी यही थे। वे अच्छा अवसर जानकर बादशाह जहांगीर के पास कश्मीर गये, जाकर पूरी स्थिति बर्ता दी कि गुरु अर्जुन देव जी का पुत्र श्री हरिगोबिन्द अपने पिता के कत्ल का बदला लेने का ज़रूर यत्न करेगा। यह भी बताया कि वह बड़ा यौद्धा है। अपने पिता की तरह शान्ति का उपासक नहीं बल्कि मुकाबला करने वाला है। गुरु के सिक्खों के अन्दर बड़ा जोश है। वे बग़ावत कर के तख़्त पर आक्रमण करने तक की कोशिश करेंगे। हम तुम्हारे पास इसलिए आए हैं कि तू वह पोथी हमें दे दे, हम उसमें इसलामी शरह तथा हिन्दू मत के शब्द डाल देते हैं तथा सिक्खों में यह फैला देते हैं कि बादशाह ने 'पोथी साहिब' से पाबन्दी हटा ली है, तथा शहादत का कारण चन्दू के बनाये हुए किस्से को अधिक प्रचारित किया जायेगा।

''उपर्युक्त समझौता जहाँगीर तथा प्रिथीचन्द की पार्टी में हुआ। यह समय खालसे के लिए ज़िन्दगी-मौत का समय था। जब खालिस बाणी में हिन्दू-मुसलमान भक्तों, भट्टों तथा डूमों की रचना मिलाकर 'सतिगुरू बिना होर कची है बाणी' का उल्लंघन कर के हमेशा के लिए गुरुबाणी को मिलावटी बना दिया गया।

''यह कौतुक १६६३-६४ वि: में हुआ। यह सब कुछ प्रिथीचन्द ने अपनी दुकान रूपी सिक्खी को चमकाने के लिए तथा खालसे के प्रचार को हमेशा के लिए समाप्त करने के लिए किया, तथा यह हुआ बादशाह के परामर्श से। यही कारण था कि प्रिथीचन्द की पार्टी को हकूमत की तरफ़ से कोई तकलीफ़ नहीं दी गई, सभी कष्ट गुरु के सिक्ख ही सहते रहे।

प्रिथीचन्द द्वारा की गई गड़बड़ को दूर करने के लिए ही श्री गुरु दशमेश जी को भाई साहिब मनी सिंघ जी से दोबारा खालिस गुरुबाणी वाली बीड़ लिखवानी पड़ी थी।"

नई जानकारी

इस उपर्युक्त साखी में हमें निम्नलिखित नयी बातें बताई गई हैं :

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की बीड़ जहांगीर ने श्री हरिमन्दर साहिब में से उठवाकर अपने कब्ज़े में कर ली थी।

२. बाबा प्रिथीचन्द जी ने यह बीड़ जहांगीर से वापिस लेकर इसमें भक्तों की बाणी दर्ज कर दी।

३. प्रिथीचन्द जी ने फिर सिक्ख कौम में यह फैलाया कि बादशाह ने 'पोथी साहिब' से पाबन्दी हटा ली है।

साखी अधूरी

पर यह नयी साखी अन्त तक चल नहीं सकी। आओ विचार करें। गुरु अर्जुन देव जी ने गुरु ग्रन्थ साहिब जी की बीड़ श्री हरिमन्दर साहिब में स्थापित करवा दी थी। बाबा बुड्ढा जी श्री हरिमन्दर साहिब के पहले ग्रन्थी नियुक्त किये गये थे। इस नयी साखी के अनुसार सतिगुरु पातिशाह की शहीदी के बाद 'बीड़' श्री हरिमन्दर साहिब में से उठवा ली गई थी। बाबा प्रिथीचन्द को सिक्ख धर्म को कमज़ोर करने का अवसर मिला। जहांगीर से 'बीड़' लेकर उन्होंने इसमें हिन्दू मत तथा इस्लाम मत के विचारों के शब्द दर्ज करा दिये तथा सिक्ख कौम में प्रचार किया कि बादशाह ने 'पोथी साहिब' से पाबन्दी हटा ली है पर इस प्रचार का सबसे शीघ्र तथा अच्छा प्रभाव पैदा करने का यही तरीका हो सकता था। यह 'बीड़' जहाँ से उठाई गई थी, फिर वहीं ले जाकर रख दी जाए। इस साखी के अनुसार यह अन्दाज़ा पाठक को स्वयं ही लगाना पड़ेगा कि 'बीड़' पुनः श्री हरिमन्दर साहिब में रख दी गई थी। यदि नहीं, तो मौखिक प्रचार का क्या लाभ ? बाबा बुड्ढा जी ग्रन्थी

तो मौजूद ही थे, फिर पहले की तरह ही 'बीड़' से (जो इस नयी साखी के अनुसार मिलावटी हो चुकी थी) बाणी का प्रचार शुरू हो गया। यह अजीब बात है कि प्रतिदिन 'बीड़' का स्वयं दर्शन करने तथा दूसरों को कराने वाले बाबा बुड्ढा जी को यह पता न लग सका कि 'बीड़' में और लिखित भी डाल दी गई है। इस 'बीड़' को लिखने वाले भाई गुरदास जी भी अभी जीवित थे तथा यहाँ अमृतसर में ही रहते थे। उनको भी पता न चल सका। बताओ, यह बात कैसे मानी जा सकती है ?

यदि इस नयी साखी को घड़ने वाले सज्जन यह कहें कि 'बीड़' को पुनः श्री हरिमन्दर साहिब में नहीं लाया गया तो बाबा प्रिथीचन्द ने अन्य कौन-सा प्रचार किया ? क्या श्री हरिमन्दर साहिब में फिर अन्य कोई 'बीड़' नहीं लाई गई ? कभी सिक्ख इतिहास ने कहीं ऐसा कोई ज़िक्र तो नहीं किया। जहाँगीर ने *तुज़क-जहाँगीरी* में गुरु अर्जुन देव जी को कष्ट देकर मरवाने का उल्लेख तो कर दिया है पर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को ज़ब्त करने की उसने कोई बात नहीं लिखी।

इस नयी साखी के लेखक एक अन्य ग़लती कर गये हैं। बाबा प्रिथीचन्द जी गुरु अर्जुन देव जी के शहीद होने से एक वर्ष पूर्व ही प्राण छोड़ चुके थे।

एक अन्य अड़चन

इस साखी पर श्रद्धा बनी रहने की राह में अभी एक अन्य अड़चन है। गुरु अर्जुन देव जी की शारीरिक मौजूदगी में ही 'बीड़' के कई लिखित रूप तैयार हो चुके थे। यह बात हमारे ये नये इतिहासकार भाई भी मानते हैं तथा लिखते हैं–"जहाँगीर कट्टर मुसलमान था। वह चाहता था कि अकबर वाले 'दीन इलाही' का ढोंग छोड़कर तलवार से इसलाम फैलाया जाए। श्री गुरु अर्जुन देव जी त्रिलोक के राजनीतिज्ञ तथा हर तरह से सर्वज्ञ थे। उन्होंने जान लिया कि आगे समय बड़ा भयानक युद्धों का आ रहा है। खालसा-धर्म की स्थापना के लिए बड़े-बड़े युद्ध लड़ने पड़ेंगे, उस समय

बाणी की सम्भाल कठिन हो जाएगी। इस विचार को आधार बनाकर महाराज ने पहले ही चार गुरु साहिबान तथा अपनी बाणी को एक स्थान पर एकत्र कर के पोथी साहिब तैयार की। इसी पोथी का प्रचार करने के लिए दूर-दूर तक उसकी प्रतियाँ तैयार कर के भेजी गई थी।''

यहाँ यह सन्देह होता है कि जहाँगीर ने श्री हरिमन्दर साहिब वाली 'बीड़' ही ज़ब्त की थी या सभी प्रतियाँ भी ज़ब्त कर लीं थी। सिक्ख धर्म के प्रचार को समाप्त करने के लिए असल करारी चोट तो यह हो सकती थी कि सभी 'बीड़ों' को ज़ब्त किया हो। सिर्फ़ अकेली 'बीड़' ज़ब्त होने से शेष अन्य स्थानों पर प्रचार कैसे बन्द हो सकता था ? तथा सभी 'बीड़ों' का ज़ब्त होना सिक्ख कौम के लिए महान् प्रलय के समान था। हमारा इतिहास इतनी बड़ी घटना का कहीं उल्लेख क्यों न कर सका ?

विचार का दूसरा पक्ष

अब इस विचार का दूसरा पक्ष लें। मान लें कि बाबा प्रिथीचन्द जी गुरु अर्जुन देव जी की शहीदी के बाद भी अभी जीवित थे। तथा यह भी मान लें कि जहाँगीर ने श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की 'बीड़' ज़ब्त कर ली थी। यह भी मान लें कि बाबा प्रिथीचन्द ने जहाँगीर के पास से 'बीड़' वापिस लेकर इसमें भक्तों आदि की बाणी दर्ज कर दी थी। पर यदि सिर्फ़ श्री हरिमन्दर साहिब वाली 'बीड़' ही ज़ब्त हुई थी तो बाबा प्रिथीचन्द भक्तों की बाणी सिर्फ़ इसी 'बीड़' में दर्ज कर सके होंगे। बाकी प्रतियों में भक्त बाणी आदि कैसे जा पहुँची ? चलो, नई साखी वाले भाई को इस अड़चन में से निकालने के लिए यह भी मान लें कि सभी 'बीड़ें' ही ज़ब्त हो गईं थी तथा बाबा प्रिथीचन्द ने सभी में ही भक्त बाणी दर्ज कर दी। जहाँगीर के हक में प्रचार करने के लिए प्रिथीचन्द जी ने ये सभी बीड़ें असल टिकानों पर वापिस भी कर दी होंगी, क्योंकि एक तरफ़ सिक्खों का जोश कम करना था, दूसरी तरफ़ सिक्ख कौम में हिन्दू मत तथा इसलाम फैलाना था। कैसा अजीब कौतुक है कि किसी सिक्ख को पता न चल सका कि गुरुबाणी में मिलावट

कर दी गई है। शायद बादशाह की तरफ़ से सिर्फ़ माथा टेकने की ही आज्ञा मिली हो, पाठ करने से अभी भी वर्जित किया हुआ हो।

भला! यह मान लें कि बाबा प्रिथीचन्द जी श्री हरिमन्दर साहिब वाली 'बीड़' में तथा सभी प्रतियों में कामयाबी से भक्त बाणी आदि दर्ज करा सके। फिर, इनको वे असल ठिकानों पर भी भेज सके। किसी को यह पता भी न लग सका कि बाणी में कोई मिलावट हो गई है।

मिलावट कैसे की गई

अब आख़िर में एक बात विचार करने वाली रह गई है कि प्रिथीचन्द जी ने भक्त बाणी किस तरीके से कहाँ-कहाँ दर्ज की। इस बारे में साखीकार जी स्वयं ही लिखते हैं–"छापे की बीड़ों में भी भक्त बाणी गुरु महाराज की बाणी के बाद में दर्ज है। उसके पृष्ठों की गिनती भी अलग है। किसी गुरु साहिब के द्वारा 'सुध कीचे' की संज्ञा नहीं दी गई है।"

इसलिए, हमारे भाई साहिब की खोज अनुसार समूह भक्त बाणी सतिगुरु जी की बाणी के बाद दर्ज की गई है। ठीक है, आख़िर में ही हो सकती थी। कई पाठकों को शायद शब्द 'सुध कीचे' की व्याख्या की आवश्यकता हो। उनकी आसानी के लिए इस बारे में थोड़ा-सा विचार करना ज़रूरी प्रतीत होता है। समूह बाणी रागों के अनुसार विभाजित है। प्रत्येक राग में पहले 'शब्द', फिर 'असटपदीयां', फिर 'छंत' और फिर 'वार' है। 'शब्द', 'असटपदीयां' आदि का क्रम भी नियम अनुसार है। पहले 'महला पहला', फिर तीजा, चौथा तथा पंजवां है। कई 'वारों' के समाप्त होने पर शब्द 'सुध' या 'सुध कीचे' आता है। साखीकार जी का भाव यह है कि भक्त बाणी 'वारों' के अन्त में दर्ज की गई है। कहते भी ठीक हैं। सतिगुरु जी के शब्दों के बीच में तो भक्तों के शब्द दर्ज हो ही नहीं सकते थे, क्योंकि गुरु साहिब ने सभी शब्दों की गिनती भी साथ-साथ लिखी हुई है। गिनती में फ़र्क पड़ने पर या संख्या को काटने से प्रिथीचन्द जी का पूरा भेद खुल जाता था। इसी तरह 'वारों' के अन्दर भी भक्तों के शब्द छिपाये नहीं जा

सकते थे, क्योंकि 'वारें' तो है ही सिर्फ़ श्लोक तथा पउड़ियाँ। इसलिए प्रिथीचन्द जी ने अक्लमन्दी से काम लिया कि भक्तों के सभी शब्द तथा श्लोक गुरु महाराज की बाणी के अन्त में दर्ज किये। कोई अजीब बात नहीं कि बाबा बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी तथा अन्य सज्जनों ने जिनके पास 'बीड़' की प्रतियाँ थीं, 'वार' के आगे के पन्ने कभी खोलकर ही न देखें हों, और इसीलिए यह मिलावट छिपी रही।

नयी उलझनें

पर इतना कुछ मान लेने पर भी हमारे भाई साहिब की साखी खरी नहीं उतर सकती। कई उलझने पड़ गई हैं। आओ, एक-एक कर के देखें।

साखीकार सज्जन जी लिखते हैं–''इतिहास के ज्ञाता अच्छी तरह जानते हैं कि भाई गुरदास जी के काशी आने से पहले भक्त-रचना पंजाब के अन्दर आ गई, तीसरे पातिशाह के नोट साफ़ प्रकट करते हैं कि भक्त रचना पर तीसरे गुरु जी ने टीका-टिप्पनी कर के नोट दिए।.....ये नोट भी मः३ के शीर्षक के नीचे मिलते हैं।'' फ़रीद जी के श्लोकों का उल्लेख करते हुए यह भाई साहिब लिखते हैं–''मौजूदा बीड़ में आप जी के चार शब्द तथा १३० श्लोक हैं। कई श्लोकों पर तीसरे तथा पाँचवें गुरु जी की तरफ़ से नोट भी दिए गए हैं।''

तथा, ''कई स्थान गुरु साहिबान द्वारा नोट किये गये हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि गुरु साहिबान ने भक्तों का सिद्धान्त कमज़ोर तथा अर्पूण समझा है।''

अब इस उपर्युक्त लिखित कथन को कसौटी पर परख कर देखें। सतिगुरु जी के जिन श्लोकों के बारे में ज़िक्र किया गया है, वे तीन भांति के हैं–एक वह जिनमें शब्द 'नानक' आता है, दूसरे वे जिनमें शब्द 'फरीद' मिलता है, तथा तीसरे वे जिनमें कोई भी नाम नहीं, जैसे कि 'दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि॥ इकि जागंदे ना लहंनि इकना सुतिआ देइ उठालि॥'' ये तीसरी तरह के श्लोक 'वारों' में भी दर्ज हैं, वहाँ शीर्षक

में इनके 'महले' का अंक भी दिया हुआ है। हमने पहले दो तरह के श्लोकों पर ही विचार करना है। ये श्लोक सिर्फ़ कबीर जी तथा फ़रीद जी के श्लोकों में ही दर्ज हैं, गुरु ग्रन्थ साहिब में अन्यत्र कहीं नहीं है। इनमें से दूसरी तरह के श्लोकों में से नमूने के लिए निम्नलिखित श्लोक पढ़ें :

म: ३

१. **इहु तनु सभो रतु है, रतु बिनु तंनु न होइ॥**
जो सह रते आपणे तितु तनि लोभु रतु न होइ॥
भै पइऐ तनु खीणु होइ, लोभु रतु विचहु जाइ॥
जिउ बैसंतरि धातु सुधु होइ,
तिउ हरि का भउ दुरमति मैलु गवाइ॥
नानक ते जन सोहणे जि रते हरि रंगु लाइ॥५२॥

२. **काइ पटोला पाड़ती, कंबलड़ी पहिरेइ॥**
नानक घर ही बैठिआ सहु मिलै, जे नीअति रासि करेइ॥१०४॥

(क) अब साखीकार की साखी मानने के रास्ते में यह अड़चन आ गई है कि ये श्लोक सिर्फ़ फ़रीद जी के श्लोकों में ही दर्ज हैं, अन्य कहीं नहीं तथा ये हैं भी फ़रीद जी के श्लोकों के सम्बन्ध में ही। जब बाबा प्रिथीचन्द जी ने भक्त बाणी 'बीड़' के अन्त में दर्ज करायी तो ये श्लोक उन्होंने 'बीड़' के किस भाग में से लिये? उस स्थान से मिटाकर भक्तों के श्लोकों में कैसे लाये गये ? जहाँ मिटाए गये हैं क्या वहाँ हड़ताल फिरी हुई है या स्याही से ढके गये हैं ? पर उस वास्तविक स्थान से मिटाने की क्या ज़रूरत पड़ी ? यदि ये श्लोक फ़रीद जी के किसी विचार के खण्डन के लिए हैं तो बाबा प्रिथीचन्द जी ने खण्डन क्यों करना था ? उसने तो बल्कि शंकाएं बढ़ानी थी, क्योंकि शंकाएं बढ़ाने के लिए ही यह समूह उद्यम किया गया था। अभी तक कोई भी ऐसी लिखित 'बीड़' देखने में नहीं आई जिसमें ये श्लोक सतिगुरु जी की अपनी बाणी में भी दर्ज हों।

यही हाल पहली तरह के श्लोकों के बारे में है। ये श्लोक तो बल्कि

यह साबित कर रहे हैं कि भक्तों की बाणी गुरु अमरदास जी के पास मौजूद थी, क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप से फ़रीद जी का नाम प्रयुक्त कर रहे हैं।

(ख) अब पाठकों के सामने भैरउ राग के शब्दों की गिनती तथा क्रम रखने की जरूरत पड़ी है। इस गिनती से पाठक स्वयं देख लेंगे कि हमारे भाई साहिब इस नई साखी के घढ़ने में ज़रा भी कामयाब नहीं हो सके। १४३० पन्नों वाली 'बीड़' के पन्ना ११२५ से शुरू करें। पन्ना नं: ११२७ के अन्त में अन्तिम अंक ८ है। भैरउ राग में ये ८ शब्द गुरु नानक साहिब के हैं। पन्ना ११३३ के अन्त में अंक २१ है। ये २१ शब्द गुरु अमरदास जी के हैं। पाठक अपनी तसल्ली कर लें। पन्ना ११३५ के अंत में अन्तिम अंक ७ है। ये ७ शब्द गुरु रामदास जी के हैं। पन्ना ११५३ की छठी पंक्ति में अंक ५७ है। ये ५७ शब्द गुरु अर्जुन देव जी के हैं, जिनका विभाजन इस प्रकार है–घरु १–१३। घरु २–४३। घरु ३–१। जोड़–५७। इस अंक नं: ५७ से आगे सभी गुरु-व्यक्तियों के शब्दों का जोड़ फिर दोहराया गया है :

महला	१ – ८
महला	३ – २१
महला	४ – ७
महला	५ – ५७
कुल जोड़	९३

अब पन्ना ११३६ पर शीर्षक 'महला ५ घरु १' के नीचे तीसरा शब्द ध्यान से देखें। इसका भी शीर्षक यही 'महला ५' है; पर इसकी अन्तिम पंक्तियाँ ऐसे हैं :

कहु कबीर इहु कीआ वखाना॥
गुर पीर मिलि खुदि खसमु पछाना॥

हमारे लिए तो श्रद्धा का सीधा रास्ता है कि क्योंकि इस शब्द का शीर्षक है 'भैरउ महला ५', इसलिए यह शब्द गुरु अर्जुन देव जी का है। आगे यह अलग सवाल है कि गुरु अर्जुन देव जी ने शब्द 'नानक' के स्थान पर 'कबीर' का प्रयोग क्यों किया ? इसका उत्तर हमने भक्त कबीर जी की

बाणी के टीका में दिया है। यहाँ हमने सिर्फ़ यह बताना है कि साखीकार के लिए उसकी नई साखी के रास्ते में भारी अड़चन आ गई है। क्या आप इस शब्द को गुरु अर्जुन देव जी का नहीं मानते ? इसका शीर्षक भी है 'महला ५' तथा यह दर्ज भी 'महला ५' के शब्दों में है। शब्द 'नानक' के स्थान पर अक्षर 'कबीर' प्रयुक्त किया जाना बताता है कि श्री गुरु अर्जुन देव जी कबीर जी के सम्बन्ध में कुछ कह रहे हैं, तथा यह बात तभी हो सकती है यदि उन्होंने कबीर जी की बाणी स्वीकार की हुई हो। पर यदि आप अभी भी इस शब्द को कबीर जी की ही रचना मानते हो, तथा यह भी कहते हो कि भक्त-बाणी बाबा प्रिथीचन्द जी ने दर्ज की थी, तो बताओ, कबीर जी का यह शब्द यहाँ गुरु साहिब के शब्दों में कैसे दर्ज हो सका ? गिनती का अन्तिम अंक ९३ कैसे तोड़ेंगे ? सिर्फ़ यह अकेला अंक नहीं, इस शब्द से लेकर अन्त तक सभी अंक ही तोड़ने पड़ेंगे। तथा सभी पुरानी 'बीड़ें' देखें, यदि बाबा प्रिथीचन्द जी ने दर्ज किया होता, तो अंक ९३ के स्थान पर पहला अंक ९२ होता, इसी तरह इससे पहले सभी अंक भी टूटे हुए होते। पर किसी भी 'बीड़' में यह बात नहीं मिलती। सीधी बात है कि भक्त-बाणी आदि बाबा प्रिथीचन्द ने या किसी अन्य ने गुरु अर्जुन देव जी के बाद दर्ज नहीं की। सतिगुरु ज़ी स्वयं ही दर्ज कर गये थे।

(ग) हमने पाठकों के सामने अभी एक और प्रमाण प्रस्तुत करना है। श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में २२ 'वारें' हैं, जिनमें से दो ऐसी हैं जिनकी पउड़ियों के साथ कोई भी श्लोक नहीं है। सत्ते बलवंड की वार तथा बसन्त की वार मः ५। बाकी २० 'वारों' की प्रत्येक पउड़ी के साथ कम से कम दो श्लोक दर्ज हैं। किसी एक स्थान पर भी इस नियम का उल्लंघन नहीं किया गया। अब पाठक सज्जन निम्नलिखित तीन वारों को ध्यान से पढ़ें—गूजरी की वार मः ३, बिहागड़े की वार मः ४, तथा रामकली की वार मः ३। इन तीनों वारों के अन्त में शब्द 'सुधु' दर्ज है, जिससे हमारा साखीकार भाई भी यह परिणाम निकालता है कि यहाँ तक की समूह बाणी गुरु अर्जुन देव जी ने स्वयं दर्ज कराई है। अब लें गूजरी की वार मः ३। इसकी २२ पउड़ियाँ

हैं, प्रत्येक पउड़ी की पाँच-पाँच पंक्तियाँ हैं तथा सभी पंक्तियों का आकार भी एक जैसा है। समूह 'वार' में बड़ी सुन्दर समानता है। प्रत्येक पउड़ी के साथ दो-दो श्लोक हैं तथा श्लोक भी सभी मः ३ के हैं। पर अब देखें पउड़ी नंः ४। इसके साथ पहला श्लोक कबीर जी का है तथा दूसरा गुरु अमरदास जी का। 'वार' की एकसुरता को मुख्य रखते हुए यह नहीं हो सकता था कि सतिगुरु जी इस पउड़ी के साथ सिर्फ़ एक श्लोक दर्ज करते। किसी भी 'वार' में ऐसी बात नहीं मिलती तथा दूसरी बात यह है कि यदि नई साखी के अनुसार भक्तों की बाणी बाबा प्रिथीचन्द ने दर्ज की तो यह श्लोक यहाँ कैसे दर्ज कर लिया ? ख़ाली स्थान कोई नहीं था जहाँ दर्ज किया जा सकता। बाहर किनारे पर भी दर्ज नहीं है यदि किनारे पर दर्ज करते तो मिलावट का भेद खुल जाना था। बाकी श्लोकों के समान पहले ही अपने स्थान पर दर्ज है। यहाँ यह बात साफ़ सिद्ध हो गई कि यह श्लोक गुरु अर्जुन देव जी ने स्वयं ही दर्ज किया था। इसी तरह देखें बिहागड़े की वार मः ४ की पउड़ी नंः १७ के साथ पहला श्लोक कबीर जी का है तथा यह गुरु अर्जुन देव जी ने स्वयं ही दर्ज किया है।

रामकली की वार मः ३ की पउड़ी नंः २ भी इसी नतीजे पर पहुँचाती है। इसके साथ का पहला श्लोक भी कबीर जी का ही है ।

समूह विचार का परिणाम

अब तक की इस लम्बी विचार में हम दो बातें देख चुके हैं:

१. यह साखी मनघड़ंत तथा ग़लत है कि भक्तों की बाणी, भट्टों के सवईये, सत्ते तथा बलवंड की वार बाबा प्रिथीचन्द ने या किसी अन्य ने गुरु अर्जुन देव जी की शहीदी के बाद दर्ज की थी।

२. भैरउ राग में, 'महला ५ घरु १' का तीसरा शब्द, जिसमें शब्द 'नानक' की जगह 'कबीर' आया है, गुरु अर्जुन देव जी ने स्वयं दर्ज किया है। गूजरी की वार मः ३, बिहागड़े की वार मः४ तथा रामकली की वार मः ३ में कबीर जी के तीन श्लोक गुरु अर्जुन देव जी ने स्वयं ही दर्ज किये हैं।

फिर, समूह भक्त-बाणी को गुरु अर्जुन देव जी के अपने हाथों दर्ज की गई क्यों नहीं माना ?

यहाँ पाठकों को फिर याद दिला देना ज़रूरी है कि :

(क) भक्त-बाणी तथा गुरु बाणी का आशय पूर्ण रूप से मिलता है;

(ख) विद्वान् टीकाकारों की बतायी बेमेल साखियाँ मनघड़ंत हैं;

(ग) भक्तों का कोई भी शब्द मूर्ति-पूजा, अवतार-पूजा, प्राणायाम, योगाभ्यास के पक्ष में नहीं है;

(घ) किसी भी भक्त ने यह नहीं लिखा कि उसने ठाकुर-पूजा आदि से परमात्मा को प्राप्त किया है।

जिन शब्दों के बारे में विद्वान टीकाकारों ने ये शंकाएं डाली हुई हैं, हमने भक्त-बाणी के टीका में उन शब्दों की व्याख्या खोलकर कर दी है।

भक्त-बाणी टीका पहला भाग पाठकों के हाथ में पहुँच चुका है। उस में १२ भक्तों के शब्दों के बारे में विचार किया जा चुका है।

भक्त रविदास जी का इष्ट

पुस्तक *गुरमति प्रकाश* में बाबा फ़रीद, भक्त जैदेव तथा वेणी जी की बाणी में से प्रमाण देकर यह सिद्ध किया था कि इन महापुरुषों की बाणी सतिगुरु नानक देव जी के पास मौजूद थी। धन्ना जी तथा गुरु अर्जुन देव जी के शब्द लेकर विस्तार से साबित किया था कि भक्त जी के बारे ठाकुर पूजा वाली घड़ी हुई कहानी बिल्कुल निर्मूल है। उन्हीं लेखों में से एक लेख में भक्त रविदास जी की बाणी में से उदाहरण देकर यह बताया था कि रविदास जी की बाणी भी गुरु नानक देव जी के पास मौजूद थी।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में रविदास जी के ४० शब्द हैं। इनको ज़रा ध्यान से पढ़ने पर इन्सानी जीवन बारे भक्त जी के विचार समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि भक्त रविदास जी के धार्मिक विचार गुरु नानक देव जी के आशय अनुसार हैं। पर पुस्तक *गुर भक्त-माल* तथा *सिक्ख रिलीजन* में भक्त रविदास जी के जीवन के बारे में कुछ ऐसी बातें लिखी मिलती हैं जो भक्त जी की अपनी बाणी के आशय से मेल नहीं खाती। *गुर भक्त-माल* एक निर्मले संत जी द्वारा लिखी हुई है तथा सम्प्रदायी सिक्ख संगत में आदर-मान से पढ़ी जाती है। पुस्तक *सिक्ख रिलीजन* मिस्टर मैकालिफ़ ने अंग्रेज़ी में लिखी है, इस पुस्तक को अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे सिक्ख श्रद्धा से पढ़ते हैं। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि भक्त रविदास जी के बारे में इन पुस्तकों में लिखे गये ख़्यालों पर विशेष-विचार किया जाए।

मैकालिफ़ के अनुसार

मैकालिफ़ ने रविदास जी का जीवन-इतिहास लिखते हुए ज़िक्र किया है कि :

१. रविदास जी ने चमड़े की एक मूर्ति बनाकर अपने घर में रखी हुई थी। इस मूर्ति की वे पूजा करते थे। मैकालिफ़ ने यह निर्णय नहीं किया कि यह मूर्ति किस अवतार की थी।

२. उस मूर्ति की पूजा में मस्त होकर रविदास ने धंधा (किरत-कार) छोड़ दिया, इसलिए उसकी माली-हालत बहुत कमज़ोर हो गई। इन तंगी के दिनों में ही एक महात्मा ने आकर भक्त जी की मायिक सहायता करने के लिए इनको पारस दिया। पहले तो रविदास जी लेने से इन्कार करते रहे पर साधु के हठ के कारण उसको ही कह दिया कि आंगन के एक कोने में पारस रख दो। १३ महीने बीत गये, वह साधु फिर दूसरी बार आया, अपना पारस वैसे ही पड़ा देखकर ले गया।

३. जिस टोकरी में रविदास जी ने मूर्ति-पूजा का सामान रखा हुआ था, उसमें से एक दिन पाँच मोहरें निकली। रविदास जी ने वे मोहरें वहीं रहने दी, तथा बाद में उस टोकरी को हाथ लगाना ही बन्द कर दिया। तो परमात्मा ने रविदास जी को आकाशवाणी द्वारा कहा—रविदास ! तुझे तो माया की कोई चाह नहीं पर अब मैं जो कुछ तुझे भेजूँ, वह वापिस मत करना। रविदास जी ने ये वचन मान लिए।

४. एक श्रद्धालु धनी ने रविदास जी को बहुत-सा धन दिया, जिस से भक्त जी ने एक सराय बनवाई, मुसाफ़िरख़ाना बनवाया, आए गये साधु संतों की यहाँ सेवा होने लगी। अपने इष्ट देव के लिए एक बड़ा सुन्दर मन्दिर तैयार करवाया तथा अपने रहने के लिए दो-मंज़िला मकान बनवाया।

५. रविदास जी की इस अच्छी मायिक हालत को देखकर ब्राह्मण दुःखी हुए। उन्होंने बनारस के राजा के पास शिकायत की कि शास्त्र आज्ञा नहीं देते कि एक नीच जाति का मनुष्य परमात्मा की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करे।

६. रविदास जी वेद-शास्त्रों में बताये गये सभी पुण्य कर्म करते थे।

गुर भक्त-माल के अनुसार

पुस्तक *गुर भक्त-माल* में रविदास जी के जीवन के बारे में ६ साखियाँ लिखी हुई हैं, उनके अनुसार :

१. ''एक ब्रह्मचारी रामानन्द जी का शिष्य हुआ। सो काशी में भिक्षा मांगकर रसोई तैयार करके रामानन्द जी को खिलाया करे। उसी शिवपुरी में एक बनिया भी नित्य ही ब्रह्मचारी को कहे कि मेरे से सीधा लेकर एक दिन रामानन्द जी को मेरा भी भोग लगावो।......एक दिन.....ब्रह्मचारी उससे सीधा लाया, रसोई रामानन्द जी की रसना ग्रहण करवाई। जब रामानन्द जी रात्रि को भगवन्त के चरणों में ध्यान स्थापित करे, किसी प्रकार भी न होवे।.....ब्रह्मचारी को बुलाकर पूछत भए कि, तू सीधा किसके घर का लाया था। ब्रह्मचारी वार्ता प्रकट करता भया।.....रामानन्द जी की आज्ञा पाकर ब्रह्मचारी तिस (बनिये) के पास जाइकर पूछत भया। बनिये ने कहा–मेरा शाह तो चमार है, तिस ही का पैसा लेकर वरतता हूँ अरु वह सदा ही दुष्ट कर्म करता है।''

''जब रामानन्द जी ने ऐसा सुना, तब कोप होकर (ब्रह्मचारी कउ) कहा–अरे दुष्ट ! तुम नीच के गृह में जन्म धारण करो।''

रामानन्द जी के इस श्राप के कारण उस ब्राह्मण ब्रह्मचारी ने एक चमार के घर जन्म लिया तथा उसका नाम रविदास रखा गया।

२. कुछ साधु संत हरिद्वार गंगा के दर्शन को गये। एक ब्राह्मण रविदास से जूता गठवाकर एक दमड़ी देकर उन संतों के साथ दर्शन के लिए जा रहा था। रविदास जी ने वही दमड़ी ब्राह्मण को देकर कहा कि गंगा माई को मेरी तरफ़ से भेंट कर देना पर कहना कि अपने हाथ निकालकर दमड़ी पकड़े। वही बात हुई।

३. परमात्मा एक साधु का वेश धारण करके रविदास जी के घर आया। भक्त ने बड़ी सेवा की। साधु रूपी प्रभु ने चलते समय एक पारस रविदास को दिया तथा कहा कि हम तीर्थों से एक साल बाद आकर ले लेंगे। भक्त

जी की रम्बी को पारस से छूकर सोना बनाकर भी दिखाया। रविदास को फिर भी उस पारस का लोभ न हुआ। साधु के हठ करने के कारण अपने घर के एक कोने में रख लिया पर उसका प्रयोग न किया । एक साल बाद वह साधु आया तथा जहाँ रख गया था वहाँ से बिना प्रयुक्त किया गया पारस वापिस ले गया।

४. "जिस जगह ठाकुर जी की पूजा भक्त जी करते थे, वहाँ ठाकुर जी के आसन के नीचे पाँच अशर्फ़ियां गुप्त ही वासुदेव जी धर गये.....जब.....पाँच अशर्फ़ियां पड़ी हुई देखी तब मन में विचार किया कि अब ठाकुर जी की सेवा भी तजो.... यह भी मन को लालच देकर भक्ति में व्यवधान डालती है।"

"रात को स्वप्न में प्रभु जगत बंदन ने भक्त जी को कहा–जब मैं पारस लेकर आया तब तैने पारस भी न लिया। अब मैं पाँच अशर्फ़ियां रखी, तब तैने धन के दुख कर मेरी सेवा का ही त्याग कर दिया .....(तू) मुझको लज्जा लवावता है.....तां ते तुम धन को ग्रहण करो।.....सो तिसी दिन ते लेकर पाँच अशर्फ़ियां रोज़ ही हरि भगवान् ठाकुरों के आसन के नीचे धर जावें, तद ही ते रविदास जी लागे भंडारे करने।"

५. रविदास जी की 'चढ़ती कला' देखकर काशी के ब्राह्मणों ने राजा के पास शिकायत की–"जाति का नीच.....चमार.....निसदिन ही ठाकुर की पूजा किया करता है। यह पूजा तिस का अधिकार नहीं। ठाकुर की पूजा हमारा अधिकार है ।"

राजे ने क्रोध में आकर रविदास को बुलाया तथा उससे पूछा–"इस शालिग्राम के पूजा की दीक्षा तुझ को किसने दी है ?" रविदास ने उत्तर दिया कि "ऊँच नीच सरब में एक हरि भगवान् ही व्यापक है। ता ते सरब जन पूजा के अधिकारी हैं ।"

पास बैठे मन्त्री ने राजा को सलाह दी कि इन सबको कहो कि अपने ठाकुरों को यहाँ लाकर नदी में डालें तथा फिर बुलायें, जिनके ठाकुर न तैरें वे जानो पत्थर ही हैं, देव नहीं हैं। यह परख होने पर "रविदास

जी के ठाकुर जल के ऊपर ऐसे तैरे जैसे मुरगाई.....। दो घड़ी पर्यन्त ठाकुर जी जल के ऊपर क्रीड़ा करते रहे।'' जब रविदास जी ने बुलाया कि आओ घर चलें, तो ''ऐसे सुनते ही ठाकुर जी दौड़कर नदी के किनारे आ लगे। तब भक्त जी ने तुलसीदल धूप दीपादि लेकर ठाकुर जी का पूजन किया।''

६. रविदास जी की यह शोभा सुनकर चित्तौड़ की रानी झाली भक्त जी की श्रद्धालु बन गई। चित्तौड़ के राजे ने इनको अपने शहर बुलवाया। वहाँ के ब्राह्मणों की बातों में आकर वहाँ पर भी परख की गई। राजे ने कहा कि हमने एक आसन तैयार कराया है, ''जैसे नदी ते निकस कर प्रभु तुमरे हाथ पर आइ स्थित भये हैं, तैसे या सिंहासन पर मन्दिर ते निकस कर ठाकुर जु आइ बिराजमान होवैं।'' ब्राह्मणों को भी यह बात कही गई। ब्राह्मणों के कहने पर ठाकुर जी न आये, पर जब रविदास जी ने ऊँचे सुर में प्रेम से शब्द का आलाप किया तो ठाकुर जी राजे के महलों में से दौड़कर भक्त जी की गोद में आ बैठे।

इसी तरह रविदास जी की एक और परख भी की गई, तो उन विप्रों ने प्रार्थना की कि ''हे भगवान् आप ने यज्ञोपवीत क्यों नहीं धारण किया हुआ।'' रविदास जी अपने नाख़ूनों से अपने शरीर का मांस उधेड़कर ''भीतर ते स्वर्ण का यज्ञोपवीत पड़ा हुआ तिन कउ दिखावते भए।''

नोट : पहली साखी में एक ही ज़िक्र है कि जब ब्रह्मचारी ने चमार के घर जन्म लिया, उस बालक को अपने पहले जन्म की अभी याद थी, अफ़सोस में वह माँ के थनों से दूध नहीं पीता था। रामानन्द जी को स्वप्न में भगवान् ने प्रेरित किया। ''ऐसे सुनकर रामानन्द जी अपना चरण धोइ कर तिस के मुख में पावत भए। बहुड़ो तारक मन्त्र देकर तिस के कान में अपना शिष्य करते भए और ऐसे वचन किया—''हे पुत्र ! दूध कउ पान करो, अब सरब पाप तेरे भाग गये हैं। अब तू निर्मल हुआ है, और आज तेरा नाम संसार में रविदास करके प्रसिद्ध हुआ।''

इन दोनों लेखकों की कहानियों के अनुसार

१. रविदास अपने पहले जन्म में एक ब्रह्मचारी ब्राह्मण थे। भक्त रामानन्द जी (ब्राह्मण) के श्राप के कारण इनको एक चमार के घर जन्म लेना पड़ा।

२. चमार के घर जन्म लेते ही रामानन्द जी (ब्राह्मण) रविदास जी के गुरु बने।

३. अपने घर में चमड़े की मूर्ति बनाकर रविदास जी इसकी पूजा करते थे। पूजा में मस्त होकर भक्त जी ने काम धन्धा (किरत-कार) छोड़ दी तथा पैसे की बहुत तंगी आ गई।

४. परमात्मा ने एक साधु के वेश में आकर रविदास जी को एक पारस दिया, पर इन्होंने उसका प्रयोग नहीं किया। फिर, जिस टोकरी में ठाकुर जी की पूजा का सामान था उसमें से या ठाकुर जी के आसन के नीचे से पाँच मोहरें मिलीं, वे भी न लीं। माया से डरते हुए उन्होंने ठाकुर जी की पूजा भी छोड़ दी।

५. परमात्मा ने स्वप्न में कहा कि मेरी पूजा न छोड़ें, तथा माया लेने से इन्कार न करें। तो फिर प्रभु द्वारा भेजी उस माया से रविदास जी ने एक मन्दिर बनवाया, अपना दो-मंज़िला घर भी बनाया, भंडारे भी चलने लगे। ब्राह्मणों ने ईर्ष्या के कारण काशी के राजा के पास शिकायत की। परख होने पर रविदास जी के ठाकुर जी नदी के ऊपर तैरे। रविदास जी ने तुलसीदल, धूप दीपादि से पूजा की।

६. रविदास जी वेद-शास्त्रों में बताये गये सभी पुण्य-कर्म करते थे।

७. रविदास जी ने जनेऊ भी पहना हुआ था, पर यह जनेऊ सोने का था तथा शरीर के मांस के भीतर था।

ठाकुर-पूजा

यदि रविदास जी की बाणी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में दर्ज न होती तो हमें इन ऊपर लिखी कहानियों की सार्थकता सिद्ध करने की आवश्यकता

न पड़ती। पुस्तक *गुरमति प्रकाश* में धन्ने भक्त जी की ठाकुर पूजा के बारे में विचार भी इसी कारण करना पड़ा क्योंकि उनकी बाणी भी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में दर्ज है। सिक्ख धर्म के मत के अनुसार ठाकुर-पूजा या मूर्ति-पूजा एक ग़लत रास्ता है। गुरु अर्जुन देव जी ने स्पष्ट कहा है :

घर महि ठाकुरु नदरि न आवै॥
गल महि पाहणु लै लटकावै॥१॥
भरमे भूला साकतु फिरता॥
नीरु बिरोलै खपि खपि मरता ॥१॥ रहाउ॥
जिसु पाहण कउ ठाकुरु कहता॥
ओहु पाहणु लै उस कउ डुबता॥२॥
गुनहगार लूणहरामी॥
पाहणु नाव न पारगिरामी॥३॥
गुर मिलि नानक ठाकुरु जाता॥
जलि थलि महीअलि पूरन बिधाता॥४॥३॥९॥

(सूही म: ५, पन्ना ७३९)

मालूम होता है कि रविदास जी बारे ठाकुर-पूजा की ये कहानियाँ श्री गुरु अर्जुन देव जी के बाद में घड़ी गईं, नहीं तो, जैसे उन्होंने धन्ना जी बारे बनी कहानी का निषेध किया था वैसे ही रविदास जी की ठाकुर-पूजा का भी निषेध कर जाते।

अब हमने इस विचार में सिर्फ़ रविदास जी की बाणी का ही आश्रय लेना है।

रामानन्द जी का श्राप

यदि रामानन्द जी के श्राप से कोई ब्रह्मचारी ब्राह्मण किसी चमार के घर जन्म लेकर रविदास कहलाया था तथा फिर रामानन्द जी इस रविदास के गुरु भी बन गये थे, तो जब रविदास थोड़ी बड़ी आयु के हुए होंगे तो इनको भी उन्होंने समूह वार्ता ज़रूर सुनाई होगी। पर यह आश्चर्यजनक बात

है कि रविदास जी समस्त आयु अपने को चमार ही समझते रहे, अपनी बांणी में स्वयं को चमार ही कहते रहे। कई शब्दों में परमात्मा के दर पर रविदास जी प्रार्थना करते हैं तथा कहते हैं कि हे प्रभु ! मेरे मन के विकार दूर कर, पर कहीं भी उन्होंने अपने पिछले जन्म की आपबीती पर विचार करते हुए यह नहीं कहा कि भूलों के कारण मैं ब्राह्मण से पतित होकर चमार जाति में पहुँच गया। श्राप की जानकारी केवल दो व्यक्तियों को ही थी, रामानन्द को तथा उस ब्रह्मचारी को। चमार के घर पैदा होकर शुरू-शुरू में उस बालक को याद भी था कि मैं ब्राह्मण से चमार बना हूँ। यदि रामानन्द जी ने श्राप की वार्ता किसी को भी नहीं सुनाई, तो *गुर भक्त-माल* के लेखक को कहाँ से पता चल गई ? यह बात ऐसी अनोखी थी कि यदि किसी एक को भी रामानन्द जी बता देते तो समूह शहर में शोर पड़ जाता तथा लोग भारी संख्या में उस अनोखे बालक को देखने आने लगते तथा रविदास जी को समस्त आयु लोग उसकी आपबीती याद कराते रहते। परन्तु रविदास जी सदा यह कहते रहे :

नागर जनां मेरी जाति बिखिआत चंमारं॥.....
मेरी जाति कुटबांढला ढोर ढोवंता, नितहि बानारसी आस पासा॥
अब बिप्र परधान तिहि करहि डंडउति,
तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा॥३॥१॥

(मलार रविदास जी, पन्ना १२९३)

एक अन्य बात बड़ी अनहोनी-सी है। *गुर भक्त-माल* के लेखक का परमात्मा भी कोई अनोखी हस्ती है। लेखक लिखता है कि जब ब्रह्मचारी ने चमारों के घर जन्म लिया तो वह अपने पूर्व उत्तम जन्म का स्मरण कर अपनी चमार माँ के स्तनों से दूध नहीं पीता था। परमात्मा ने रामानन्द को स्वप्न में डांट लगाई कि एक छोटी-सी बात के पीछे तूंने उस गरीब ब्रह्मचारी को श्राप देकर क्यों यह कष्ट दिया। क्या लेखक के परमात्मा की इच्छा के बिना ज़बरदस्ती रामानन्द ने ब्राह्मण को चमार के घर जन्म दिया ? क्या भक्ति का परिणाम यही निकलना चाहिए कि भक्त अपनी मर्ज़ी करने लग

जायें ? तथा क्या ऐसे भक्त संसार में जो भी अनर्थ करना, करवाना चाहें, परमात्मा को ज़रूर करने पड़ते हैं ? यह तो ठीक है कि–"भगत जना का करे कराइआ" पर भक्त भी वही हो सकता है जो परमात्मा की पूर्ण इच्छा में रहता है। भक्त कोई ऐसी बात सोचता भी नहीं जो परमात्मा की इच्छा के अनुसार न हो। इस कहानी में एक बात स्पष्ट है कि इसको घढ़ने वाले को चमार आदि निम्न जाति वालों से नफ़रत है तथा परमात्मा की भक्ति उस को केवल ब्राह्मण का ही अधिकार दिखता है।

गुप्त ढंग से ब्राह्मण की पूजा

रविदास जी के ठाकुरों का ज़िक्र करते समय तो *गुर भक्त-माल* के लेखक ने बहुत उदारता का प्रदर्शन किया है। ठाकुर जी नदी में तैरते रहे, ठाकुर जी चित्तौड़ के राजा के महलों में से चलकर राज-दरबार में पहुँचकर रविदास जी की गोद में आ बैठे। जब काशी की नदी में से तैरकर ठाकुर जी अपने भक्त रविदास के कहने पर बाहर आए तो रविदास जी ने तुलसीदल तथा धूप दीपादि से ठाकुर जी की पूजा की। जब चितौड़ के राज-दरबार में रविदास जी के ठाकुर जी रविदास जी की गोद में आ विराजमान हुए तो ब्राह्मणों को भण्डारे के लिए सामग्री भेजी गई, ब्राह्मणों ने सामग्री लेने से इन्कार किया तो परमात्मा स्वयं सेवक-रूप धारण करके आया तथा ब्राह्मणों के घरों में सामग्री पहुँचाने गया। एक अजीब कौतुक होता रहा। ब्राह्मणों के ठाकुर जी नदी में डूबे ही रहे तथा ब्राह्मणों के कहने पर, चित्तौड़ के राज-दरबार में चलकर भी न पहुँच सके, जब खाने-पीने का समय आया तो सेवक-रूप धारण करके ब्राह्मणों के घर सामग्री पहुँचा आए। देख लें, इसको कहा जाता है : "भाई भाइयों के तथा कौए कौओं के"। कोई भी बात हो, कहीं भी हो, बार-बार ब्राह्मणों की पूजा तथा ब्राह्मणों को भण्डारे। जिस स्थिति में पड़े हुए लोगों को सतिगुरु नानक देव जी ने बाहर निकाला था, पता नहीं *गुर भक्त-माल* के लेखक भोली-भाली सिक्ख जनता को क्यों फिर वहीं उसी स्थिति में पहुँचाने की कोशिश कर गये हैं।

गुरमति तथा ठाकुर-पूजा

सिक्ख रिलीजन तथा *गुर भक्त-माल* के लेखकों ने इन कहानियों द्वारा यह सिद्ध किया है कि रविदास जी का ठाकुर-मूर्ति तथा परमात्मा में कोई भेद नहीं था। जब रविदास जी की ग़रीबी देखकर परमात्मा ने ठाकुर जी के (भाव, अपने) आसन के नीचे पाँच मोहरें रखीं तथा रविदास जी ने ठाकुर-पूजा ही छोड़ दी तो रात को स्वप्न में परमात्मा ने रविदास जी को कहा कि तुमने मेरी पूजा क्यों छोड़ दी है।

क्या यही है सिक्ख-धर्म, जिसका प्रचार इन पुस्तकों ने किया है ? पर गुरु अर्जुन देव जी का ठाकुर तो वह है जो प्रत्येक हृदय रूप डिब्बे में स्थित है तथा जो हर समय ही उदक-स्नानी है, आप फ़रमाते हैं :

आसा महला ५॥

आठ पहर उदक इसनानी॥ सद ही भोगु लगाइ सु गिआनी॥
बिरथा काहू छोडै नाही॥ बहुरि बहुरि तिसु लागह पाई॥१॥
सालगिरामु हमारै सेवा॥ पूजा अरचा बंदन देवा॥१॥ रहाउ॥
घंटा जा का सुनीऐ चहुकुंट॥ आसनु जा का सदा बैकुंठ॥
जा का चवर सभ ऊपरि झूलै॥ ता का धूपु सदा परफुलै॥२॥
घटि घटि संपटु है रे जा का॥ अभग सभा संगि है साधा॥
आरती कीरतनु सदा अनंद॥ महिमा सुंदर सदा बेअंत॥३॥
जिसहि परापति तिस ही लहना॥ संत चरन ओहु आइओ सरना॥
हाथ चड़िओ हरि सालगिरामु॥
कहु नानक गुरि कीनो दानु॥४॥३९॥९०॥

गुरु नानक पातशाह से प्यार करने वाले गुरसिक्ख जब ऐसी साखियाँ पढ़ते हैं तो उन्हें सचेत रहना चाहिए कि चमड़े या पत्थर आदि के बने हुए ठाकुर की पूजा करने वाले किसी भी व्यक्ति की बाणी को श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की पवित्र बोड़ में स्थान नहीं मिल सकता था।

दोनों ही लेखक यह लिखते हैं कि रामानन्द जी रविदास जी के गुरु थे। तो फिर यदि रविदास जी ठाकुर-पूजक थे तो यह ठाकुर-पूजा उनको उनके गुरु रामानन्द जी ने ही सिखाई होगी। पर रामानन्द जी तो पत्थर आदि के बने हुए ठाकुर की पूजा करने के विरोधी थे। वे लिखते हैं :

बसंत रामानंद जी ॥

कत जाईऐ रे घरि लागो रंगु॥
मेरा चितु न चलै मनु भइओ पंगु॥१॥ रहाउ॥
एक दिवस मन भई उमंग॥ घसि चंदन चोआ बहु सुगंध॥
पूजन चाली ब्रहम ठाइ॥ सो ब्रहमु बताइओ गुर मन ही माहि॥१॥
जहा जाईऐ तह जल पखान॥ तू पूरि रहिओ है सभ समान॥
बेद पुरान सभ देखे जोइ॥ ऊहां तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ॥२॥
सतिगुर मै बलिहारी तोर॥ जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर॥
रामानंद सुआमी रमत ब्रहम॥ गुर का सबदु काटै कोटि करम॥३॥१॥

यदि रामानन्द जी स्वयं ऐसी ठाकुर-पूजा के विरुद्ध थे, वे कभी रविदास जी को ठाकुर-पूजा की शिक्षा नहीं दे सकते थे। जिस रामानन्द को अपना स्वामी ब्रह्म सभी जीवों में दिखाई देता था, वे किसी पर क्रुद्ध होकर कोई श्राप भी नहीं दे सकते थे। इसलिए, यह ब्रह्मचारी शिष्य वाली कहानी मनघड़ंत है।

अब, आओ देखें कि भक्त रविदास जी अपनी बाणी में किस रूप में दिखाई देते हैं।

भक्त रविदास जी तथा ठाकुर-पूजा

गुर भक्त-माल का लेखक लिखता है कि जब ठाकुर जी नदी में तैरकर किनारे पर आए तो रविदास जी ने तुलसीदल, धूप दीपादि से ठाकुर जी की पूजा की। क्या रविदास जी की अपनी बाणी में से कोई ऐसी गवाही मिलती है ? वे तो बल्कि इसके विपरीत लिखते हैं :

गूजरी रविदास जी॥

दूधु त बछरै थनहु बिटारिओ॥ फूलु भवरि, जलु मीनि बिगारिओ॥१॥
माई गोबिंद पूजा कहा लै चरावउ॥
अवरु न फूलु, अनूपु न पावउ॥१॥ रहाउ॥
मैलागर बेर्हे है भुइअंगा॥ बिखु अंम्रितु बसहि इक संगा॥२॥
धूप दीप नईबेदहि बासा॥ कैसे पूज करहि तेरी दासा॥३॥
तनु मनु अरपउ पूज चरावउ॥ गुर परसादि निरंजनु पावउ॥४॥
पूजा अरचा आहि न तोरी॥ कहि रविदास कवन गति मोरी॥५॥१॥

तथा :

धनासरी रविदास जी॥

नामु तेरो आरती मजनु मुरारे॥
हरि के नाम बिनु झूठे सगल पासारे॥१॥ रहाउ॥
नामु तेरो आसनो नामु तेरो उरसा, नामु तेरा केसरो ले छिटकारे॥
नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो,
घसि जपे नामु ले तुझहि कउ चारे॥१॥
नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती,
नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे॥
नाम तेरे की जोति लगाई, भइओ उजिआरो भवन सगलारे॥२॥
नामु तेरो तागा नामु फूल माला, भार अठारह सगल जूठारे॥
तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ, नामु तेरा तुही चवर ढोलारे॥३॥
दस-अठा, अठ-सठे, चारे खाणी, इहै वरतणि है सगल संसारे॥
कहै रविदासु नामु तेरो आरती, सति नामु है हरि भोग तुहारे॥४॥३॥

रविदास जी कर्म-काण्डी

मैकालिफ़ ने पुस्तक *सिख रिलीजन* में लिखा है कि रविदास जी वेद शास्त्रों में बताये गये सभी पुण्य-कर्म करते थे, पर वेद शास्त्रों में बताये कर्म-काण्ड के बारे में रविदास जी स्वयं लिखते हैं :

केदारा रविदास जी

खटु करम कुल संजुगतु है, हरि भगति हिरदै नाहि॥
चरनारबिंद न कथा भावै, सुपच तुलि समानि॥१॥
रे चित चेति चेत अचेत॥ काहे न बालमीकहि देख॥
किसु जाति ते किह पदहि अमरिओ, राम भगति बिसेख॥१॥ रहाउ॥
सुआन सत्रु अजातु सभ ते क्रिस्न लावै हेतु॥
लोगु बपुरा किआ सराहै, तीनि लोक प्रवेस॥२॥
अजामलु पिंगुला लुभतु कुंचरु गए हरि कै पासि॥
ऐसे दुरमति निसतरे तू किउ न तरहि रविदास॥३॥१॥

यहाँ एक और बात भी विचारणीय है। रविदास जी कौन-से किसी उच्चकुल के ब्राह्मण थे कि वे किसी कर्म-काण्ड में लिप्त रहते। न जनेऊ पहनने का अधिकार, न मन्दिर में प्रवेश करने की आज्ञा, न ही किसी श्राद्ध के समय ब्राह्मण ने उनके घर का खाना, न संध्या, तर्पण, गायत्री आदि का उनको अधिकार। फिर वह कौन-सा कर्म-काण्ड था जिसमें रविदास जी की रुचि हो सकती थी ?

हाँ, भैरउ राग में रविदास जी ने एक शब्द लिखा है, जिसको ग़लत समझकर किसी ने यह बात बना ली होगी कि रविदास जी वेद-शास्त्रों में बताये गये सभी पुण्य-कर्म करते थे। वह शब्द इस प्रकार है :

बिनु देखे उपजै नही आसा॥ जो दीसै सो होइ बिनासा॥
बरन सहित जो जापै नामु॥ सो जोगी केवल निहकामु॥१॥
परचै, रामु रवै जउ कोई॥ पारसु परसै दुबिधा न होई॥१॥ रहाउ॥
सो मुनि मन की दुबिधा खाइ॥ बिनु दुआरे त्रै लोक समाइ॥
मन का सुभाउ सभु कोई करै॥ करता होइ सु अनभै रहै॥२॥
फल कारन फूली बनराइ॥ फलु लागा तब फूलु बिलाइ॥
गिआनै कारन करम अभिआसु॥
गिआनु भइआ तह करमह नासु॥३॥

घ्रित कारन दधि मथै सइआन॥ जीवत मुकत सदा निरबान॥
कहि रविदास परम बैराग॥ रिदै रामु की न जपसि अभाग॥४॥१॥

प्रत्येक शब्द का मुख्य-भाव 'रहाउ' की पंक्ति में हुआ करता है, बाकी के पदों में उसकी व्याख्या होती है। इस शब्द का मुख्य-भाव है–"जो मनुष्य नाम-सिमरन करता है उसका मन प्रभु में लग जाता है, पारस-प्रभु का स्पर्श पाकर वह मनुष्य, मानो सोना हो जाता है।" बाकी के शब्द में उस सोना बन गये मनुष्य के जीवन की तस्वीर इस प्रकार दी है– १. वह मनुष्य निष्काम, वासना रहित हो जाता है; २. उस मनुष्य की दुविधा मिट जाती है तथा वह निर्भय हो जाता है; ३. उसका किरत-कार का मोह समाप्त हो जाता है; ४. वह मनुष्य जीवित ही मुक्त हो जाता है (इस शब्द के अर्थ टीका में पढ़ें)।

गुर भक्त-माल के लेखक की यह बात भी हास्यास्पद है कि चित्तौड़ के राजा के सामने परख की कसौटी पर पूरा उतरने पर रविदास जी से ब्राह्मणों ने पूछा कि आप जनेऊ क्यों नहीं पहनते। धर्म-शास्त्र तो शूद्र को जनेऊ पहनने की आज्ञा ही नहीं देता, ब्राह्मण यह प्रश्न पूछ ही नहीं सकते थे। यह बात लिखने का उद्देश्य तो केवल यह प्रतीत होता है कि रविदास जी को पूर्व जन्म का ब्राह्मण सिद्ध किया जाए। वर्तमान जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए पूर्व जन्म का आश्रय लेना कोई बुद्धिमानी नहीं है। हम वर्तमान जीवन की प्रणाली का विवेचन कर रहे हैं, हमने भक्त रविदास जी के उसी जीवन के बारे में विचार-विमर्श करना है जो उन्होंने 'भक्त रविदास' नाम के आधीन बिताया। उस नाम के आधीन रविदास जी जाति के चमार ही थे। हिन्दू धर्म-शास्त्र उन्हें जनेऊ आदि किसी भी कर्म-काण्ड की आज्ञा नहीं दे सकता था। न ही रविदास जी को किसी कर्म-काण्ड की आवश्यकता थी। वे तो एक परमात्मा का आश्रय लेने वाले थे, परमात्मा की बंदगी करने वाले थे। परमात्मा से उसका नाम तथा उसके संतों की संगति की कृपा की याचना करते थे। आप लिखते हैं :

आसा रविदास जी

संत तुझी तनु संगति प्रान॥ सतिगुर गिआन जानै संत देवादेव॥१॥
संत ची संगति संत कथा रसु॥ संत प्रेम माझै दीजै देवादेव॥१॥ रहाउ॥
संत आचरण संत चो मारगु संत च ओल्हग ओल्हगणी॥२॥
अउर इक मागउ भगति चिंतामणि॥
जणी लखावहु असंत पापी सणि॥३॥
रविदासु भणै जो जाणै सो जाणु॥
संत अनंतहि अंतरु नाही॥४॥२॥

काम-धन्धे का त्याग

मैकालिफ़ लिखता है कि रविदास जी ने अपने ठाकुर जी की पूजा में मस्त होकर काम-धन्धा छोड़ दिया तथा हाथ बहुत तंग हो गया । हमारे देश के धार्मिकों ने यह भी एक अजीब तमाशा बनाया हुआ है। भला, भक्ति करने वाले को अपनी रोटी कमानी क्यों मुश्किल हो जाती है ? क्या जीविकार्जन करना पाप है ? यदि यह पाप है तो परमात्मा ने मनुष्यों के लिए भी रोज़ी का वही प्रबन्ध क्यों न कर दिया जो पक्षियों आदि के लिए है ? पर वास्तविक बात यह है कि हमारे देश में सन्यासियों का इतना प्रभाव है कि लोग यह समझने लग गये हैं कि वास्तविक भक्त वही है जो सारा दिन माला फेरता रहे तथा अपनी रोटी का भार दूसरों के कन्धों पर डालता रहे। ऐसे विचारों से प्रभावित लोग यदि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के किसी शब्द में थोड़ा-सा भी ऐसा संकेत देखते हैं तो तुरन्त परिणाम निकाल लेते हैं कि बन्दगी तथा काम-धन्धे का आपस में मेल नहीं है। सोरठि राग में श्री गुरु नानक देव जी का शब्द (मनु हाली किरसाणी करणी) पढ़कर कई लेखकों ने कहानी जोड़ ली कि सतिगुरु नानक देव जी नाम में इतने मस्त रहते थे कि उन्होंने काम-धन्धा करना भी छोड़ दिया। बाबा फ़रीद जी का श्लोक (फरीदा रोटी मेरी काठ की) पढ़कर लोगों ने यह धारणा बना ली कि फ़रीद जी ने रोटी खानी छोड़ दी थी तथा जब भूख बहुत सताती थी तो अपने

पास पोटली में बांधी हुई एक काठ की रोटी को दान्तों से चबाकर काम चला लेते थे। इसी तरह मालूम होता है कि भक्त रविदास जी के निम्नलिखित शब्द को न समझते हुए यह कहानी बन गई कि रविदास जी ने ठाकुर जी की पूजा में मस्त होकर काम-धन्धा छोड़ दिया :

सोरठि रविदास जी

चमरटा गांठि न जनई॥ लोगु गठावै पनही॥१॥ रहाउ॥
आर नही जिह तोपउ॥ नही रांबी ठाउ रोपउ॥१॥
लोगु गंठि गंठि खरा बिगूचा॥ हउ बिनु गांठे जाइ पहूचा॥२॥
रविदासु जपै राम नामा॥ मोहि जम सिउ नाही कामा॥३॥७॥

रविदास जी बनारस के निवासी थे, तथा यह शहर विद्वान ब्राह्मणों का भारी केन्द्र चला आ रहा है। ब्राह्मणों के नेतृत्व में यहाँ मूर्ति-पूजा का ज़ोर होना भी स्वाभाविक है। एक तरफ़ उच्चजाति के विद्वान लोग मन्दिरों में जाकर मूर्ति-पूजा करें, दूसरी तरफ़ एक अति निम्न जाति का कंगाल तथा ग़रीब रविदास एक परमात्मा के सिमरन का प्रचार करे—यह एक अजीब-सा कौतुक बनारस में हो रहा था। ब्राह्मणों द्वारा चमार रविदास को उसकी निम्न जाति का स्मरण कराकर उसका उपहास करना भी स्वाभाविक था। ऐसी स्थिति सर्वत्र दैनिक जीवन में देखी जा रही है।

इस उपर्युक्त शब्द में रविदास जी लोगों के इस उपहास का उत्तर देते हैं तथा कहते हैं कि मैं तो भला जाति का ही चमार हूँ, पर लोग ऊँचे कुल के होकर भी चमार बने पड़े हैं। यह शरीर मानो एक जूता है। ग़रीब मनुष्य बार-बार अपना जूता गठवाता है कि बहुत समय काम दे जाए। इसी तरह माया के मोह में फंसे हुए लोग (चाहे वे उच्चकुल के भी हों) इस शरीर में जोड़ लगाने के लिए दिन-रात इसके पालन-पोषण में लगे रहते हैं तथा प्रभु को भुलाकर परेशान होते हैं। जैसे चमार जूता गांठता है, वैसे ही माया-ग्रसित जीव शरीर को सदा अच्छी पोशाकें, ख़ुराक तथा दवाई आदि देकर उसमें सिलाई टांके लगाता रहता है। अतः समूह जगत् ही चमार बना हुआ

है। पर रविदास जी कहते हैं कि मैं लोगों के समान दिन-रात शरीर के चक्कर में ही नहीं रहता, मैंने प्रभु के नाम का सिमरन करना अपना मुख्य-धर्म बनाया है। इसीलिए मुझे मौत का, शरीर के नष्ट होने का भय नहीं रहा।

भक्त जी की अवतार-पूजा

भक्तों की बाणी में किसी अवतार आदि के नाम के प्रयोग को देखकर यह परिणाम निकालना भारी भूल होगी कि अमुक भक्त अमुक अवतार का उपासक था। यदि यही कसौटी ठीक समझी जानी है तो यही नाम कई बार गुरु साहिबान ने भी बाणी में प्रयुक्त किये हैं। 'आसा की वार' में सतिगुरु नानक देव जी का श्लोक प्रतिदिन पढ़ा सुना जाता है जिसमें सतिगुरु जी ने शब्द 'क्रिसन' का प्रयोग किया है :

एक क्रिसनं सरब देवा देव देवा त आतमा ॥
आतमा बासुदेवस्यि जे को जाणै भेउ॥
नानकु ता का दासु है सोई निरंजन देउ॥४॥ *(पउड़ी १२)*

वास्तविकता यह है कि ये शब्द राम, क्रिसन, माधो, गोबिंद, हरि, रामईआ, दमोदर, मुरारि आदि सभी परमात्मा के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

भक्त रविदास जी के कुल ४० शब्द हैं। निम्नलिखित केवल एक शब्द ही ऐसा है जहाँ भक्त जी ने शब्द 'राजा राम चंद' का प्रयोग किया है :

सोरठि

जल की भीति, पवन का थंभा, रकतु बुंद का गारा॥
हाड मास नाड़ी को पिंजरु, पंखी बसै बिचारा॥१॥
प्रानी, किआ मेरा किआ तेरा॥
जैसे तरवर पंखि बसेरा॥१॥ रहाउ॥
राखहु कंध उसारहु नीवां॥ साढे तीनि हाथ तेरी सीवां॥२॥
बंके बाल पाग सिरि डेरी।। इहु तनु होइगो भसम की ढेरी॥३॥
ऊचे मंदर सुंदर नारी॥ राम नाम बिनु बाजी हारी॥४॥

मेरी जाति कमीनी, पांति कमीनी,
ओछा जनमु हमारा॥
तुम सरनागति राजा राम चंद,
कहि रविदास चमारा॥५॥६॥

इस शब्द में साधारण तौर पर जगत् की निस्सारता का वर्णन है कि इन नश्वर पदार्थों से मोह करने का कोई लाभ नहीं है। सिर्फ़ अन्तिम पंक्ति में प्रार्थना है कि इस ममत्व से बचने के लिए हे प्रभु ! मैं तेरी शरण में आया हूँ। यदि रविदास जी अवतार श्री रामचन्द्र जी के उपासक होते तो वह अपने इस इष्ट का ज़िक्र उन शब्दों में विशेष रूप से करते जिनमें वे सिर्फ़ प्रार्थना ही कर रहे हैं या जिनमें अपने इष्ट का गुण-गान किया हुआ है। कहीं न कहीं तो अपने इष्ट के किसी कारनामे का ज़िक्र करते। पर ऐसा कोई एक शब्द भी नहीं मिलता। भक्त रविदास जी ने यहाँ शब्द 'चंद' का प्रयोग वैसे ही किया है जैसे भट्ट नल्य ने गुरु रामदास जी की प्रशंसा में सवईए का उच्चारण करते समय किया है। देखें भट्ट नल्य का सवईआ नं: ४ :

राजु जोगु तखतु दीअनु गुर रामदास॥
प्रथमे नानक चंदु, जगत भयो आनंदु,
तारनि मनुख्य जन कीअउ प्रगास॥

(इसकी व्याख्या के लिए पढ़ें मेरी पुस्तक *भट्टों के सवईए टीका।* शब्द 'चंद' का भाव है 'चांद जैसा सुन्दर', चांद जैसे शीतलता देने वाला, शान्ति का पुंज।)

किसी एक अवतार का उपासक दूसरे अवतार की पूजा नहीं कर सकता। पर रविदास जी ने तो शब्द हरि, राजा राम, माधो, मुरारि आदि का प्रयोग करते समय किसी तरह का कोई भेद नहीं रखा। माधो, मुरारि श्री कृष्ण जी के नाम हैं। प्रमाण के लिए :

सोरठि १– माधवे किआ कहीऐ भ्रमु ऐसा॥
जैसा मानीऐ होइ न तैसा॥१॥ रहाउ॥

सोरठि २– माधवे जानत हहु जैसी तैसी॥
अब कहा करहुगे ऐसी॥१॥ रहाउ॥
आपन बापै नाही किसी को भावन को हरि राजा॥.....

सोरठि ३– बिनु हरि भगति कहहु किह लेखै॥
न बीचारिओ राजा राम को रसु॥
जिह रस अन रस बीसरि जाही॥१॥ रहाउ॥

सोरठि ४– हरि हरि हरि न जपहि रसना॥
अवर सभ तिआगि बचन रचना॥१॥ रहाउ॥

आसा ५– हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे॥
हरि सिमरत जन गए निसतरि तरे॥१॥ रहाउ॥

धनासरी ३– नामु तेरो आरती मजनु मुरारे॥
हरि के नामु बिनु झूठे सगल पासारे॥१॥ रहाउ॥

मलार– नागर जनां मेरी जाति बिखिआत चंमारं॥
रिदै राम गोबिंद गुन सारं॥१॥ रहाउ॥

निष्कर्षतः भक्त रविदास जी उस प्रभु के उपासक थे जिसके लिए वे स्वयं ही लिखते हैं :

सुखसागरु सुरतर चिंतामनि, कामधेनु बसि जा के ॥
चारि पदारथ असट दसा सिधि, नव निधि कर तल ता के॥१॥
हरि हरि हरि न जपहि रसना॥
अवर सभ तिआगि बचन रचना॥१॥ रहाउ॥ *(सोरठि ४)*

भक्त रविदास जी की बाणी पर की गई आपत्तियों पर विचार

१. जाति-पाति के पक्के श्रद्धालु

भक्त-बाणी के विरोधी सज्जन लिखते हैं : "भक्त जी चमार जाति के थे। भक्त जी की बाणी से भी साबित होता है। आप जी ने कई जाति-अभिमानी पण्डितों को नीचा दिखाया पर स्वयं जाति-पाति से अलग न हो सके। जगह-जगह स्वयं को चमार संज्ञा का उल्लेख करते हैं।

"आप जी की रचना के शब्द 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' की छापे वाली बीड़ के अन्दर देखे जाते हैं जिनमें से कई शब्दों का आशय गुरमति से काफ़ी दूर है। सिद्धान्त की पुष्टि के लिए कुछ प्रमाण दिए जाते हैं।

"भक्त जी जाति-पाति के पक्के श्रद्धालु थे। जगह-जगह स्वयं को चमार लिखते हैं, तथा अपनी जाति को बहुत नीचा (निम्न) बताते हैं। आप कहते हैं :

(क) **मेरी जाति कमीनी, पांति कमीनी, ओछा जनमु हमारा॥**
तुम सरनागति राजा राम चंद, कहि रविदास चमारा॥ *(सोरठि)*

(ख) **मेरा करमु कुटिलता, जनमु कुभांती॥** *(गउड़ी)*

(ग) **प्रेम भगति कै कारणै कहु रविदास चमार॥** *(गउड़ी)*

(घ) **मेरी जाति कुट बांढला ढोर ढोवंता......** *(मलार)*

"उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि भक्त जी जाति-पाति के पूर्ण समर्थक थे। अपने रोज़गार को घटिया मानते थे। पर गुरमति में जाति-पाति का खंडन किया गया है। कुछ प्रमाणों द्वारा सिद्धान्त की पुष्टि की जाती है :

(क) **अगै जाति न पुछीऐ, करणी सबदु है सारु॥** *(म: ३)*

(ख) **खसमु विसारहि ते कमजाति॥**
नानक नावै बाझु सनाति॥ *(आसा म: १)*

(ग) **बिनु नावै सभ नीच जाति है, बिसटा का कीड़ा होइ॥७॥** *(आसा म: ३)*

स्पष्ट है कि भक्त जी के तथा गुरु जी के सिद्धान्त में बहुत विरोध है।''

विरोधी सज्जनों ने यह दोष भक्त कबीर जी तथा भक्त नामदेव जी पर भी लगाया है कि कबीर जी अपने आपको हर जगह जुलाहा लिखते हैं तथा नामदेव जी अपनी जाति को निम्न जाति समझते थे।

वाह ! पंजाबी कहावत है : 'जिस तन लागे सोई जाणे।' जो व्यक्ति सदियों से जाति-पाति के ज़ुल्म को सहते चले आ रहे हैं, उनसे पूछकर देखें कि जुलाहा, छींबा, चमार आदि कहलवाने में या अपने आप को कहने में उनको क्या अनुभव होता है। ऊँची जाति का वर्णन तो गर्व के साथ किया जा सकता है, निम्न जाति के उल्लेख में कैसा मान ? यह वर्णन तो ऊँची जाति वालों को ललकारने के लिए था। विरोधी सज्जन जी ने मलार राग में से जो प्रणाम (घ) दिया है, यदि वे पूरा शब्द ही लिख देते या स्वयं पढ़ लेते तो बात साफ़ हो जाती।

आगे चलकर विरोधी सज्जन जी जाति-पाति बारे ऐसे लिखते हैं : ''अमृतधारी खालसा जो जाति-पाति से बिल्कुल रहित है, वह तो खालसा दीवान में कीर्तन द्वारा प्रचार कर के ख़्याति प्राप्त करे कि :

'हीनड़ी जाति मेरी जादमराइआ'
'कहि रविदास चमारा'
'मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी'
'मै कासीक जुलाहा'

क्या अमृतधारी जुलाहे चमार हैं ?''

विरोधी सज्जन जी का जाति-पाति के विरुद्ध भाव है, उसकी प्रशंसा

किये बिना नहीं रहा जा सकता। पर यह भाव एक पक्षीय ही है। निम्न जाति से ही घृणा है, तथा इसी घृणा के विरुद्ध कबीर जी, नामदेव जी तथा फ़रीद जी पुकार-पुकार कर जाति का अभिमान रखने वालों को ललकारते हैं।

सज्जन जी ! खालसे ने जुलाहा, चमार नहीं बने, पर देश में से यह जाति-भेद दूर करना है। भक्तों द्वारा खालसे के आगे यह करोड़ों लोगों की अपील है, इसको बार-बार पढ़ें, उनके दुःख के सहभागी बने, तथा बन्धुत्व जीवन में उनको ऊँचा करें। सिद्धों जैसे खालसा स्वयं पर्वतों पर न जा चढ़े, उन दुखियों की भी सम्भाल करे।

२. अवतार-भक्ति

विरोधी सज्जन जी लिखते हैं : भक्त जी एक परमात्मा को छोड़कर राजा रामचन्द्र आदि देहधारी व्यक्तियों के पुजारी थे तथा उन्हें परमात्मा-रूप समझकर पूजते थे। उदाहरण के लिए कुछ प्रमाण दिये जाते हैं :

(क) **राजा राम की सेव न कीनी कहि रविदास चमारा॥** *(आसा)*

(ख) **बिनु रघुनाथ** (राजा रामचन्द्र) **सरनि का की लीजै॥** *(जैतसरी)*

(ग) **तुम सरनागति राजा राम चंद, कहि रविदास चमारा॥** *(सोरठि)*

"उपर्युक्त शब्दों से सिद्ध है कि भक्त जी अकालपुरख के वास्तविक रूप को छोड़कर राजा रामचन्द्र के पुजारी थे। पर गुरमति में अवतार-पूजा का ज़बरदस्त खण्डन है।.....

"साबित हुआ कि जहाँ भक्त जी राजा रामचन्द्र जी के पुजारी हैं, वहाँ गुरु साहिबान अवतार-पूजा के सख़्त विरोधी हैं। भाव, भक्त जी का मत गुरमति की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता।"

इस विषय पर पहले भी 'भक्त रविदास जी का इष्ट' में विचार किया जा चुका है।

रविदास जी ने अपने ४० शब्दों में अवतारों के नामों का प्रयोग निम्नलिखित के अनुसार किया है :

१.	राम, राजा राम	–	२१ बार
	राजा राम चंद	–	१ बार
	रघुनाथ	–	१ बार
२.	हरि	–	२४ बार

(*नोट :* शब्द 'हरि' संस्कृत कोशों में विष्णु, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा तथा यमराज के लिए प्रयुक्त हुआ है।)

३.	माधव	–	८ बार
	मुरारि	–	२ बार
	मुकंद	–	१४ बार
	गोबिंद	–	४ बार
		जोड़	२८

नोट : ये चारों कृष्ण जी के नाम हैं।

४.	देव	–	३ बार
	अनंत	–	१ बार
	करता	–	१ बार
	निरंजन	–	१ बार
	सतिनामु	–	१ बार
	प्रभ	–	१ बार
	नाराइन	–	१ बार
		जोड़	९

पर ये समस्त ही नाम सतिगुरु जी की अपनी बाणी में सैंकड़ों बार प्रयुक्त किये गये हैं। शब्द 'राजा राम' तो बड़े अनोखे ढंग में लिखा मिलता है। देखें :

सूही छंत मः ४, (पन्ना ७७६)

साधन आसा चिति करे राम राजिआ, हरि प्रभ सेजड़ीऐ आई॥
मेरा ठाकुरु अगम दइआलु है राम राजिआ,
करि किरपा लेहु मिलाई॥

मेरै मनि तनि लोचा गुरमुखे राम राजिआ,
हरि सरधा सेज विछाई॥
जन नानक हरि प्रभ भाणीआ राम राजिआ,
मिलिआ सहजि सुभाई॥३॥

अगला पद भी पढ़ें। समस्त अवतार सम्बन्धी नामों का प्रयोग परमात्मा के अर्थ में किया गया है।

विरोधी सज्जन जी तो लिखते हैं–'भक्त जी का मत गुरमति की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता।'

पर देखें, सतिगुरु जी की अपनी राय क्या है :

सूही महला ४, घरु ६, (पन्ना ७३३)
नीच जाति हरि जपतिआ, उतम पदवी पाइ॥
पूछहु बिदर दासी सुतै, किसनु उतरिआ घरि जिसु जाइ॥१॥
हरि की अकथ कथा सुनहु जन भाई,
जितु सहसा दूख भूख सभ लहि जाइ॥१॥ रहाउ॥
रविदासु चमारु उसतति करे, हरि कीरति निमख इक गाइ॥
पतित जाति उतमु भइआ, चारि वरन पए पगि आइ॥२॥

गुरु रामदास जी की दृष्टि में तो भक्त रविदास परमात्मा का भक्त था।

पर यहाँ तो सतिगुरु जी ने भी शब्द 'चमार' प्रयुक्त किया है। क्या विरोधी सज्जन जी सतिगुरु जी को भी 'जाति-पाति' के श्रद्धालु समझ लेंगे ? और देखें :

सिरी रागु मः ३, असटपदीआ, (पन्ना ६७)
नामा छीबा, कबीरु जुोलाहा, पूरे गुर ते गति पाई॥
ब्रहम के बेते सबदु पछाणहि, हउमै जाति गवाई॥
सुरि नर तिन की बाणी गावहि, कोइ न मेटै भाई॥३॥५॥२२॥

पर, विरोधी सज्जन जी तो इन भक्तों की बाणी को गुरमति के विरुद्ध कह रहे हैं।

३. (क) **अन्य सैद्धान्तिक मत-भेद** के शीर्षक में विरोधी सज्जन जी भक्त रविदास जी का आसा राग का पाँचवां शब्द (हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे.......) देकर लिखते हैं–"पत्थर-पूजा की पुष्टि करना गुरमति के विरुद्ध है।"

यह तो बिल्कुल ठीक है। पर सज्जन जी ! इस शब्द में आपको 'पत्थर-पूजा की पुष्टि' कहाँ दिखाई दे रही है ? 'रहाउ' की पंक्तियों को ज़रा ध्यान से पढ़ें।

पाठक सज्जन इसके अर्थ टीका में पढ़ें। विरोधी सज्जन जी की तरफ़ से 'पूर्ण विस्तार नामदेव जी के सम्बन्ध में दिया जायेगा।' हम भी नामदेव जी की बाणी के टीका में ही (जो भक्त बाणी टीका के भाग ३ में दिया जायेगा) विचार करेंगे।

(ख) **राखहु कंध उसारहु नीवां॥**
साढे तीनि हाथ तेरी सीवां॥ *(सोरठि रविदास जी)*

ये पंक्तियां देकर विरोधी सज्जन जी लिखते हैं–"इससे कब्र का सिद्धान्त साबित होता है। पर गुरमति में कब्रों का खण्डन है। गुरमति में दबाने या जलाने का वहम ही नहीं है।"

सज्जन जी ! यदि गुरमति में जलाने-दबाने वाला वहम ही नहीं है, तो 'कब्रों का खण्डन' कैसे हो गया ? तथा उपर्युक्त पंक्तियों में 'कब्र का सिद्धान्त' कैसे साबित कर लिया गया ? अगला पद ज़रा पढ़कर देखना था :

बंके बाल पाग सिरि डेरी॥
इहु तनु होइगो भसम की ढेरी॥३॥

रविदास जी तो साधारण-सी बात कह रहे हैं कि बड़े-बड़े महलों वाले भी नित्य अपने शरीर के लिए (सोते समय) अधिक से अधिक साढ़े तीन हाथ जगह का ही प्रयोग करते हैं (भाव, सोने के लिए साढ़े तीन हाथ स्थान की ही ज़रूरत पड़ती है)।

विरोधी सज्जन जी फुट-नोट में लिखते हैं–''चमार मुसलमानों की तरह अपने मुर्दे धरती में दबाते हैं।'' यह उनको ग़लत सूचना प्राप्त हुई है। नियमित रूप से तो वे मुर्दे जलाते ही हैं पर जो ग़रीब रोटी ही न जुटा पाते हों वे सस्ता रास्ता ही अपनाएंगे, तथा इसमें कोई बुराई भी नहीं है।

नोट : पाठक सज्जन इस समूह शब्द का अर्थ टीका में पढ़ें। अर्थ में मत-भेद हो सकता है। यदि पद नंः २ में कब्र की तरफ़ ही संकेत है तो पद नंः ३ में शमशान की ओर संकेत है। इसलिए हिन्दू मुसलमान दोनों को ही उपदेश समझ लिया जाए।

(ग) **पुरसलात का पंथु दुहेला॥** *(सूही रविदास जी)*

यह पंक्ति देकर विरोधी सज्जन जी लिखते हैं : ''यह इसलामी विचार है। मुसलमान मानते हैं कि पुरसलात एक सड़क है जिसको पार करना पड़ता है। पर गुरमति के अनुसार आवागमन का मसला स्वीकृत है। यहाँ भी भक्त जी का मत तथा सतिगुरु साहिबान का सिद्धान्त टकराता है। इस तरह रविदास-मत गुरमति की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता।''

सिर्फ़ एक शब्द को लेकर नतीजा निकाल लेना ग़लत रास्ता है। इस समूह शब्द में स्पष्ट मुसलमानी शब्द सिर्फ़ 'पुरसलात' ही है। शब्द 'जबाबु' तथा 'दरदवंदु' साधारण ही हैं। शब्द के बाकी समूह अक्षर 'हिन्दकी' (लहंदे पंजाब की उपबोली) है। 'हिन्दकी' शब्दों के द्वारा किसी इसलामी विचार का प्रचार करना हास्यास्पद प्रतीत होता है। ध्यान से पढ़कर देखें। इस शब्द में 'सुहागणि' तथा 'दुहागणि' के जीवन की तुलना की गई है। 'दुहागणि' के जीवन-सफ़र का ज़िक्र करते हुए भक्त जी कहते हैं कि प्रभु-चरणों से बिछुड़ी जीव-स्त्री का जीवन-मार्ग ऐसा ही 'दुहेला' तथा कठिन है जैसे मुसलमान 'पुरसलात' के रास्ते को कठिन मानते हैं। केवल शब्दों की ओर न जाएं, ज़बरदस्त ग़लती लगने का डर है। देखें :

मारू महला ५, घरु ८ अंजुलीआ, (पन्ना १०१९-२०)
पाप करेदड़ सरपर मुठे॥ अजराईलि फड़े फड़ि कुठे॥
दोजकि पाए सिरजणहारै, लेखा मंगै बाणीआ॥२॥२॥८॥

१ओ सतिगुरप्रसादि॥

सिरी रागु॥

तोही मोही मोही तोही, अंतरु कैसा॥
कनक कटिक, जल तरंग जैसा॥१॥
जउ पै हम न पाप करंता, अहे अनंता॥
पतित पावन नामु, कैसे हुंता॥१॥ रहाउ॥
तुम जु नाइक आछहु अंतरजामी॥
प्रभ ते जनु जानीजै, जन ते सुआमी॥२॥
सरीरु अराधै मो कउ बीचारु देहू॥
रविदास सम दल समझावै कोऊ॥३॥

पद अर्थ : तोही मोही–तेरे मेरे में। मोही तोही–मेरे तेरे में। अंतरु–अन्तर, भेद, फ़र्क। कैसा–किस तरह का है ? अंतरु कैसा–कोई वास्तविक भेद नहीं है। कनक–सोना। कटिक–कड़े, कंगन। जल तरंग–पानी की लहरें। जैसा–जिस तरह का।१।

जउ पै–यदि। हम–हम जीव। न करंता–न करते। अहे अनंता–हे अनन्त प्रभु! पतित–नीच, विकारों में पड़े हुए। पावन–पवित्र करने वाला। पतित पावन–नीच को ऊँचा करने वाला, पापियों को पवित्र करने वाला। कैसे–कैसे। हुंता–होता।१। रहाउ।

नाइक–नायक, सीधे रास्ते पर डालने वाला। आछहु–हैं। प्रभ ते–स्वामी से, स्वामी को परखकर। जनु–सेवक, नौकर। जानीजै–पहचाना जाता है। जन ते–सेवक को, सेवक को परखने से।२।

अराधै–अराधना करे। सरीरु अराधै–शरीर अराधना करे, जब तक

शरीर कायम है, मैं सिमरन करूँ, अराधना करूँ। मो कउ–मुझे। बीचारु–सन्मति, सूझ। देहू–दें। सम दल–दलों में समान-व्यवहार करने वाला, सभी जीवों में व्यापक। कोऊ–कोई (संत-जन)।३।

अर्थ : (हे परमात्मा !) तेरा मेरे से, मेरा तेरे से (असल) अन्तर कैसा है ? (वैसा ही है) जैसा सोने तथा सोने के कड़ों में, या पानी तथा पानी की लहरों में है।१।

हे अनन्त (प्रभु) जी ! यदि हम जीव पाप न करते तो तेरा नाम (पापियों को पवित्र करने वाला) 'पतित-पावन' कैसे हो जाता ?।१। रहाउ।

हे हमारे दिलों की जानने वाले प्रभु ! तू जो हमारा स्वामी है (तो फिर स्वामियों वाला बिरद पाल, अपने 'पतित पावन' नाम की लाज रख)। मालिक को देखकर यह जान लिया जाता है कि इसका सेवक कैसा है तथा सेवक से मालिक की परख हो जाती है।२।

(इसलिए, हे प्रभु !) मुझे यह सूझ बख़्श कि जब तक मेरा यह शरीर कायम है तब तक मैं तेरा सिमरन करूँ। (यह भी कृपा कर कि) रविदास को कोई संत-जन यह समझ (भी) दे दे कि तू सर्वव्यापक है।३।

शब्द का भाव : वास्तव में परमात्मा तथा जीवों में कोई भेद नहीं है। वह स्वयं ही सभी जगह व्यापक है, जीव उसको भुलाकर पापों में पड़कर उससे अलग (भिन्न) प्रतीत होते हैं। आख़िर, वह स्वयं ही किसी संत-जन से मिलाप कराकर भूले हुए जीवों का अपना वास्तविक स्वरूप दिखाता है।

१ओं सतिनामु करता पुरखु गुरप्रसादि॥

रागु गउड़ी, रविदास जी के पदे

गउड़ी गुआरेरी

मेरी संगति पोच, सोच दिनु राती॥
मेरा करमु कुटिलता, जनमु कुभांती॥१॥
राम गुसईआ, जीअ के जीवना॥
मोहि न बिसारहु, मै जनु तेरा॥१॥ रहाउ॥
मेरी हरहु बिपति, जन करहु सुभाई॥
चरन न छाडउ, सरीर कल जाई॥२॥
कहु रविदास, परउ तेरी साभा॥
बेगि मिलहु जन, करि न बिलांबा॥३॥१॥

पद अर्थ : संगति–साथ बैठना-उठना। पोच–नीच। सोच–चिन्ता। कुटि–टेढ़ी लकीर। कुटिल–टेढ़ी चालें चलने वाला, खोटा। कुटिलता–टेढ़ी चालें चलने का स्वभाव, खोट। कुभांती–कु+भांती, बुरा, निम्न किस्म का, निम्न जाति में से।१।

गुसईआ–हे स्वामी! हे धरती के मालिक! जीअ के–प्राणों के। मोहि–मुझे।१। रहाउ।

हरहु–दूर करें। बिपति–मुसीबत, बुरी संगति रूप विपत्ति। जन–मुझे, दास को। करहु–बना लें। सुभाई–सु+भाई, अच्छी भावना वाला। न छाडउ–मैं नहीं छोड़ूंगा। कल–शक्ति। जाई–चली जाये, नष्ट हो जाये।२।

कहु–कह। रविदास–हे रविदास! परउ–मैं पड़ता हूँ, मैं पड़ा हूँ। साभा–सांभ, सम्भाल, शरण। बेगि–जल्दी। बिलांबा–देर, ढील।३।१।

नोट : रविदास जी के पदे–रविदास जी के ५ शब्द हैं, तीन शब्द ऐसे हैं जिनके तीन-तीन पद (Stanzas) हैं; एक शब्द चार पदों वाला है तथा एक शब्द आठ पदों वाला है। इसलिए, सभी के लिए इक्ट्ठा शब्द 'पदे' का प्रयोग कर दिया है, त्रिपदे, चौपदे, असटपदी लिखने के स्थान पर।

अर्थ : हे मेरे राम ! हे धरती के स्वामी ! हे मेरे प्राणों के आसरे ! मुझे न भूलना, मैं तेरा दास हूँ ।१। रहाउ।

(हे प्रभु !) दिन रात मुझे यह चिन्ता रहती है (कि मेरा क्या बनेगा ?) बुरे लोगों के साथ मेरा बैठना-उठना है, कुटिलता मेरा (नित्य का) कर्म है, मेरा जन्म (भी) निम्न जाति में से है।१।

(हे प्रभु !) मेरी इस विपत्ति को दूर करें, मुझ सेवक को अच्छी भावना वाला बना लें। चाहे मेरे शरीर की ताकत भी चली जाए, (हे राम !) मैं तेरे चरण नहीं छोड़ूंगा ।२।

हे रविदास ! (प्रभु-दर पर) कह–(हे प्रभु !) मैं तेरी शरण में आया हूँ, मुझ सेवक को जल्दी मिलें, ढील न करें।३।१।

भाव : प्रभु-दर पर अरदास–हे प्रभु ! मैं मन्द-कर्मी हूँ पर तेरी शरण में आया हूँ। मुझे कुसंगति से बचाए रखें।

बेगमपुरा सहर को नाउ ॥
दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ॥
ना तसवीस खिराजु न मालु॥
खउफु न खता न तरसु जवालु॥१॥
अब मोहि खूब वतन गह पाई॥
ऊहां खैरि सदा मेरे भाई॥१॥ रहाउ॥
काइमु दाइमु सदा पातिसाही॥
दोम न सेम, एक सो आही॥
आबादानु सदा मसहूर॥
ऊहां गनी बसहि मामूर॥२॥

तिउ तिउ सैल करहि, जिउ भावै॥
महरम महल न को अटकावै॥
कहि रविदास खलास चमारा॥
जो हम सहरी, सो मीतु हमारा॥३॥२॥

पद अर्थ : बेगम–बे+ग़म, जहाँ कोई ग़म नहीं। को–का। अंदोहु–चिंता। तिहि ठाउ–उस जगह पर, उस आत्मिक अवस्था में। तसवीस–चिन्ता, घबराहट। खिराजु–कर, मसूल, टैक्स। खता–दोष, पाप। तरसु–डर। जवालु–ज़वाल, घाटा।१।

मोहि–मैं। वतन गह–वतन-गाह, वतन का स्थान, रहने की जगह। खैरि–ख़ैरीअत, सुख।१। रहाउ।

काइमु–स्थिर रहने वाली। दाइमु–सदा। दोम सेम–दूसरा तीसरा (दर्जा)। एक सो–एक जैसे। आही–हैं। आबादानु–आबाद। गनी–धनी, धनाढ्य। मामूर–सन्तुष्ट हुए।२।

सैल करहि–मनमर्ज़ी से चलते फिरते हैं। महरम–परिचित। महरम महल–महल के परिचित। को–कोई। न अटकावै–रोकता नहीं। कहि–कहता है। खलास–जिस ने दुःख, तकलीफ़ आदि से मुक्ति प्राप्त कर ली है। हम सहरी–एक ही शहर का रहने वाला, हम-वतन, सत्संगी।३।

नोट : इस शब्द में दुनिया के लोगों के द्वारा माने गए स्वर्ग आदि के मुकाबले में वास्तविक आत्मिक अवस्था का वर्णन है। स्वर्ग-भिश्त के तो केवल इकरार ही हैं, मनुष्य केवल आशा ही कर सकता है कि मरने के बाद मिलेगा; पर जिस आत्मिक अवस्था का यहाँ उल्लेख है, उसे मनुष्य इस जीवन में ही अनुभव कर सकता है, यदि वह जीवन के सही मार्ग पर चलता है।

अर्थ : हे मेरे भाई ! अब मैंने रहने के लिए सुन्दर स्थान ढूँढ लिया है, वहाँ हमेशा सुख ही सुख है।१। रहाउ।

(जिस आत्मिक अवस्था रूप शहर में मैं रहता हूँ) उस शहर का नाम

बे-ग़म पुरा है (भाव, उस अवस्था में कोई ग़म व्याप्त नहीं हो सकता), उस स्थान पर न कोई दुःख है, न चिन्ता तथा न कोई घबराहट है, वहाँ दुनिया वाली जायदाद नहीं, तथा न ही उस जायदाद को कोई टैक्स है, उस अवस्था में किसी पाप-कर्म का ख़तरा नहीं, कोई डर नहीं, कोई गिरावट नहीं।१।

वह (आत्मिक अवस्था एक ऐसी) बादशाहत है (जो) स्थायी रहने वाली है, वहाँ किसी का दूसरा, तीसरा दर्जा नहीं, सभी एक जैसे हैं, वह शहर प्रसिद्ध तथा आबाद है, वहाँ धनी तथा तृप्त हुए लोग रहते हैं (भाव, उस आत्मिक अवस्था में जो-जो पहुँचते हैं, उनके अन्दर कोई भेद-भाव नहीं रहता, तथा उनको दुनिया की कोई भूख नहीं रहती)।२।

(उस आत्मिक शहर में पहुँचे हुए मनुष्य उस अवस्था में) आनन्द से रहते हैं, वे उस (ख़ुदाई) महल का भेद जानने वाले होते हैं, (इसलिए) कोई (उनके राह में) रुकावट नहीं डाल सकता; चमार रविदास (जिसने दुःख, चिन्ता, घबराहट आदि से मुक्ति प्राप्त कर ली है) कहता है–हमारा मित्र वह है, जो हमारा सत्संगी है।३।२।

भाव : प्रभु से मिलाप वाली आत्मिक अवस्था में हमेशा आनन्द ही आनन्द बना रहता है।

१ओं सतिगुरप्रसादि॥

गउड़ी बैरागणि रविदास जीउ॥

घट अवघट डूगर घणा, इकु निरगुणु बैलु हमार॥
रमईए सिउ इक बेनती, मेरी पूंजी राखु मुरारि॥१॥
को बनजारो राम को,
मेरा टांडा लादिआ जाइ रे॥१॥ रहाउ॥
हउ बनजारो राम को, सहज करउ ब्यापारु॥
मै राम नाम धनु लादिआ, बिखु लादी संसारि॥२॥
उरवार पार के दानीआ, लिखि लेहु आल पतालु॥
मोहि जम डंडु न लागई, तजीले सरब जंजाल॥३॥

जैसा रंगु कसुंभ का, तैसा इहु संसारु॥
मेरे रमईए रंगु मजीठ का, कहु रविदास चमार॥४॥१॥

पद अर्थ : घट–रास्ते। अवघट–कठिन। डूगर–पहाड़ी, पहाड़ का। घणा–घना। निरगुणु–गुणहीन। हमार–हमारा, मेरा। रमईआ–सुन्दर राम। मुरारि–हे प्रभु ! हे मुरारि !।१।

को–कोई। बनजारो–वणज करने वाला, व्यापारी। टांडा–बलदों या गड्ढों, ठेलों का समूह जिन पर व्यापार का माल लादा हुआ हो, काफ़ला। रे–हे भाई ! लादिआ जाइ–लादा जा सके।१। रहाउ।

सहज ब्यापारु–सहज का व्यापार, अडोलता का व्यापार, वह व्यापार जिस में से शान्तिरूप कमाई प्राप्त हो। करउ–करूँ, मैं करता हूँ। हउ–मैं। बिखु–ज़हर, आत्मिक जीवन को नष्ट कर देने वाली वस्तु। संसारि–संसार ने, दुनियादारों ने।२।

दानीआ–जानने वालों ! उरवार पार के दानीआ–इस पार तथा उस पार की जानने वालों ! जीवों के लोक तथा परलोक में किये कर्मों को जानने वालों ! आल पतालु–ऊल जलूल, मनमर्ज़ी की बातें। मोहि–मुझे। डंडु–दण्ड। तजीले–छोड़ दिए हैं।३।

रमईए रंगु–सुन्दर राम (के नाम) का रंग। मजीठ रंगु–मजीठ का रंग, पक्का रंग, जैसे मजीठ का रंग होता है, कभी न उतरने वाला रंग।४।

अर्थ : हे भाई ! (यदि सुन्दर प्रभु की कृपा से) प्रभु के नाम का व्यापार करने वाला कोई मनुष्य मुझे मिल जाए, तो मेरा माल भी लादा जा सके (भाव, तो उस गुरसिक्ख की सहायता से मैं भी हरि-नाम रूप माल का व्यापार कर सकूँ)।१। रहाउ।

(जिन रास्तों से प्रभु के नाम का सौदा लादकर ले जाने वाला मेरा काफ़ला जाना है, वे) रास्ते बड़े कठिन, पहाड़ी रास्ते हैं तथा मेरा (मन) बैल कमज़ोर-सा है; प्यारे प्रभु के आगे ही मेरी प्रार्थना है–हे प्रभु ! मेरी राशि-पूँजी की तू आप रक्षा कर ।१।

(*नोट :* आँख, कान, नाक, जीभ आदि ज्ञानेन्द्रियों का समूह, मनुष्य व्यापारी का बैलों या ठेलों का समूह है, इन्होंने नाम-व्यापार लादना है पर इनके राह में रूप-रस आदि मुश्किल घाटियाँ हैं।)

मैं प्रभु के नाम का व्यापारी हूँ, मैं यह ऐसा व्यापार कर रहा हूँ जिस में से मुझे सहज अवस्था की कमाई प्राप्त हो । (प्रभु की कृपा से) मैंने प्रभु के नाम का माल लादा है, पर संसार ने (आत्मिक मौत लाने वाला माया रूप) ज़हर का व्यापार किया है।२।

जीव के लोक परलोक के सभी कार्यों को जानने वाले हे चित्रगुप्त ! (मेरे बारे) जो तुम्हारा दिल करे लिख लेना (भाव, यमराज के पास पेश करने के लिए मेरे कार्यों में से कोई बात तुम्हें मिलनी ही नहीं क्योंकि प्रभु की कृपा से) मैंने सभी जंजाल छोड़ दिये हैं, इसीलिए मुझे यम का दण्ड लगना ही नहीं ।३।

हे चमार रविदास ! कह–(ज्यों-ज्यों मैं राम के नाम का व्यापार कर रहा हूँ, मुझे विश्वास हो रहा है कि) यह जगत् ऐसा है जैसे कसुंभे का रंग तथा मेरे प्यारे राम का नाम रंग ऐसे है जैसे मजीठ का रंग।४।१।

नोट : इस शब्द के पहले पद में भक्त रविदास जी 'रमईए' के आगे प्रार्थना करते समय 'मुरारि' शब्द से सम्बोधन करते हैं। यदि यह किसी विशेष एक अवतार के पुजारी होते तो श्री रामचन्द्र जी के लिए 'मुरारि' शब्द का प्रयोग न करते, क्योंकि 'मुरारि' तो श्री कृष्ण जी का नाम है।

भाव : सत्संगियों के साथ मिलकर नाम-धन अर्जित करने से विकारों का भार उतर जाता है।

१ओ सतिगुरप्रसादि॥

गउड़ी पूरबी, रविदास जीउ॥

कूपु भरिओ जैसे दादिरा, कछु देसु बिदेसु न बूझ॥
ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ,
कछु आरा पारु न सूझ॥१॥
सगल भवन के नाइका,
इकु छिनु दरसु दिखाइ जी॥१॥रहाउ॥

मलिन भई मति माधवा, तेरी गति लखी न जाइ॥
करहु क्रिपा भ्रमु चूकई, मै सुमति देहु समझाइ॥२॥
जोगीसर पावहि नही, तुअ गुण कथनु अपार॥
प्रेम भगति कै कारणै, कहु रविदास चमार॥३॥१॥

पद अर्थ : कूपु–कुआँ। दादिरा–मेंढक। बिदेसु–विदेश, प्रदेश। बूझ–समझ। ऐसे–इस तरह। बिखिआ–माया। बिमोहिआ–अच्छी तरह मुग्ध हुआ। आरा पारु–आर-पार। न सूझ–नहीं सूझता।१।

नाइका–हे स्वामी! दरसु–दर्शन।१। रहाउ।

मलिन–मलीन, मैली। मति–बुद्धि, अक्ल। माधवा–हे प्रभु ! गति–हालत। लखी न जाइ–पहचानी नहीं जा सकती। भ्रमु–भटकन। चूकई– मुक जाए, समाप्त हो जाए। मै–मुझे।२।

जोगीसर–जोगी+ईसर, बड़े-बड़े योगी। कथनु नही पावहि–अन्त नहीं पा सकते। कै कारणै–की ख़ातिर, के लिए। प्रेम कै कारणै–प्रेम (की दाति) हासिल करने हेतु। कहु–कह। गुण कहु–गुणों का कथन कर, सिफ़ति-सालाह कर। तुअ–तेरे।३।

अर्थ : जैसे (कोई) कुआँ मेंढकों से भरा हो, (उन मेंढकों को) कोई जानकारी नहीं होती (कि उस कुएँ से बाहर कोई अन्य) देश प्रदेश भी है, वैसे ही मेरा मन माया (के कुएँ) में इतना बुरी तरह फंसा हुआ है कि इसको (माया के कुएँ में से निकलने के लिए) कुछ आर-पार का नहीं सूझता।

हे समस्त भवनों के स्वामी ! मुझे एक क्षण भर के लिए (ही) दर्शन दे ।१। रहाउ।

हे प्रभु ! मेरी बुद्धि (विकारों के कारण) मलिन हुई पड़ी है (इसलिए) मुझे तेरी गति का ज्ञान नहीं होता (भाव, मुझे समझ नहीं आती कि तू कैसा है)। हे प्रभु ! कृपा कर, मुझे सुमति देकर समझा (ताकि) मेरी भटकन दूर हो जाए।२।

(हे प्रभु !) बड़े-बड़े योगी (भी) तेरे अनन्त गुणों का अन्त नहीं पा

सकते, (पर) हे रविदास चमार ! तू प्रभु की सिफ़ति-सालाह कर, ताकि तुझे प्रेम-भक्ति की दाति मिल सके।३।१।

भाव : प्रभु-दर पर प्रार्थना–हे प्रभु ! मेरे माया में मोहित मन को अपना दीदार देकर सुमति में लगाएं।

१ओं सतिगुरप्रसादि॥

गउड़ी बैरागणि

सतजुगि सतु, तेता जगी, दुआपरि पूजाचार॥
तीनौ जुग तीनौ दिड़े, कलि केवल नाम अधार॥१॥
पारु कैसे पाइबो रे॥ मो सउ कोऊ न कहै समझाइ॥
जा ते आवागवनु बिलाइ॥१॥रहाउ॥
बहु बिधि धरम निरूपीऐ, करता दीसै सभ लोइ॥
कवन करम ते छूटीऐ, जिह साधे सभ सिधि होइ ॥२॥
करम अकरम बीचारीऐ, संका सुनि बेद पुरानु॥
संसा सद हिरदै बसै, कउनु हिरै अभिमानु॥३॥
बाहरु उदकि पखारीऐ, घट भीतरि बिबिधि बिकार॥
सुध कवन पर होइबो, सुच कुंचर बिधि बिउहार॥४॥
रवि प्रगास रजनी जथागति, जानत सभ संसार॥
पारस मानो ताबो छुए, कनक होत नही बार॥५॥
परम परस गुरु भेटीऐ, पूरब लिखत लिलाट॥
उनमन मन मन ही मिले, छुटकत बजर कपाट॥६॥
भगति जुगति मति सति करी, भ्रम बंधन काटि बिकार॥
सोई बसि रसि मन मिले, गुन निरगुन एक बिचार॥७॥
अनिक जतन निग्रह कीए, टारी न टरै भ्रम फास॥
प्रेम भगति नही ऊपजै, ता ते रविदास उदास॥८॥१॥

नोट : 'रहाउ' की पंक्तियों में रविदास जी कहते हैं कि कोई मनुष्य मुझे यह बात समझाकर नहीं बताता कि जन्म-मरन का चक्र कैसे समाप्त होगा तथा जगत् के जंजाल में से कैसे मुक्ति मिलेगी।

जब हम शब्द के शेष पद पढ़ते हैं तो इनमें भक्त जी कहते हैं कि पण्डित लोग कई तरह के कर्म-काण्ड की आज्ञा कर रहे हैं। पर रविदास जी के विचार के अनुसार ये सभी कर्म-धर्म विकारों तथा झंझटों से पार नहीं लगा सकते। पद नं: ४ तक आप यही बात कहते जा रहे हैं। पद नं: ५ से भक्त जी ने अपना मत बताना शुरू किया है कि गुरु-पारस को मिलने से विकारों में व्यर्थ पड़े जंग लगे लोहे जैसा हुआ मन सोना बन जाता है। अन्तिम पद में फिर कहते हैं कि कर्म-काण्ड आदि के अन्य सभी यत्न व्यर्थ हैं, इनसे प्रभु की प्रेम-भक्ति पैदा नहीं होती, इसलिए मैं यह कर्म-काण्ड नहीं करता।

शब्द के पदों के इस क्रम से यह बात स्पष्ट दिखाई दे रही है कि पहले पद में भी रविदास जी पण्डित लोगों का ही मत ब्यान कर रहे हैं, उनके अपने मत का इसमें कोई ज़िक्र नहीं है। हिन्दुओं की पुरानी धर्म-पुस्तकें ही युगों का विभाजन करती आई हैं, तथा प्रत्येक युग का अलग-अलग धर्म बताती आई हैं। उदाहरण के लिए पुस्तक *महाभारत* में युगों के विभाजन के बारे में इस प्रकार उल्लेख है :

द्वापरे मन्त्रशक्तिस्तु, ज्ञानशक्तिः कृते युगे॥
त्रेतायां युद्ध शक्तिस्तु, संघशक्तिः कलौ युगे॥

पर रविदास जी हिन्दू-शास्त्रों के किसी प्रकार के युगों के विभाजन से सहमत नहीं हैं। यदि थोड़ा-सा विचार करके भी देखें, तो यह कैसे हो सकता है कि कभी तो घोड़े आदि को मारकर यज्ञ करना, जीवन का सही मार्ग हो, कभी तीर्थों का स्नान मानव-जन्म का उद्देश्य हो, कभी देवताओं की पूजा तथा कभी अवतारों की पूजा इन्सानी फ़र्ज़ हो। प्रकृति के नियम हमेशा अटल हैं, जब से सृष्टि बनी है तथा जब तक बनी रहेगी, इन नियमों में कोई अन्तर नहीं आयेगा। जगत् के वही पाँच तत्व अब हैं जो सृष्टि के प्रारम्भ में थे।

मनुष्य स्वयं भटकन में पड़कर चाहे कई कुरीतियों में पड़ जायें, परन्तु परमात्मा तथा उसके द्वारा पैदा किये जीवों का परस्पर सम्बन्ध हमेशा से एक-समान चला आ रहा है।

इस शब्द में जो विशेष ध्यान योग्य बात है वह यह है कि पहले पद में रविदास जी हिन्दू-शास्त्रों का ही पक्ष बता रहे हैं, उनकी अपनी सम्मति इसके साथ नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इस पद के अन्त में आधी पंक्ति इस प्रकार है–'कलि केवल नाम अधार'। ऊपर से देखने पर हम इस शंका में पड़ जाते हैं कि यह भक्त जी का अपना सिद्धान्त है पर यह बात नहीं है। रविदास जी इसके सम्बन्ध में यही कहते हैं :

प्रेम भगति नही ऊपजै, ता ते रविदास उदास॥

आसा की वार की पउड़ी नं: ६ के साथ पहला श्लोक भी इसी तरह का है। इस श्लोक में गुरु नानक देव जी मुसलमान, हिन्दू, योगी, दानी तथा विकारी–इनके जीवन-करतब बताकर आख़िर में अपना विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं कि :

नानक भगता भुख सालाहणु, सचु नामु आधारु॥
सदा अनंदि रहहि दिनु राती, गुणवंतिआ पा छारु॥१॥६॥

पर टीकाकार सज्जन इस श्लोक की पहली दो पंक्तियों का अर्थ करते समय शंका खा जाते हैं। पंक्तियां ये हैं :

मुसलमाना सिफति सरीअति, पड़ि पड़ि करहि बीचारु॥
बंदे से जि पवहि विचि बंदी, वेखण कउ दीदारु॥

यहाँ प्रायः लोग दूसरी पंक्ति में गुरु नानक देव जी का अपना सिद्धान्त समझते हैं पर यह विचार बिल्कुल ही ग़लत है, यहाँ मुसलमानी शरह का ही ज़िक्र है। (पढ़ें मेरा *आसा की वार टीका*)।

इसी तरह रविदास जी 'कलि केवल नाम अधार' में अपना मत नहीं बता रहे, वे तो यह बात कहकर आगे साथ ही यह कहते हैं कि :

पारु कैसे पाइबो रे॥
मो सउ कोऊ न कहै समझाइ॥
जा ते आवागवनु बिलाइ॥१॥रहाउ॥

तब तो रविदास जी के विचार के अनुसार यह 'नाम अधार' ऐसा नहीं है 'जा ते आवागवनु बिलाइ'।

तो फिर, जिन लोगों ने युगों का विभाजन करके 'कलि केवल नाम अधार' कहा, उन्होंने यहाँ नाम को क्या समझा था तथा रविदास जी क्यों इसका निषेध कर रहे हैं ?

इस प्रश्न का सही उत्तर ढूंढने के लिए भैरउ राग में कबीर जी के एक शब्द से सहायता मिलती है। शब्द नः ११ में कबीर जी मुल्लां, काज़ी, सुलतान, योगी तथा हिन्दू का ज़िक्र करते हुए अन्तिम पद में लिखते हैं :

जोगी गोरखु गोरखु करै॥ हिंदू राम नाम उचरै॥
मुसलमान का एकु खुदाइ॥
कबीर का सुआमी रहिआ समाइ॥४॥३॥११॥

यहां कबीर जी योगी, हिन्दू और मुसलमान के स्थिर हुए इष्ट-परमात्मा का निषेध करते हैं और अपने सुआमी के संबंध में विचार प्रकट करते हैं कि वह 'रहिआ समाइ'। 'रहाउ' में भी अपने 'सुआमी' के संबंध में लिखते हैं :

है हजूरि कत दूरि बतावहु॥
दुंदर बाधहु सुंदर पावहु॥

(*नोट :* इस शब्द को विस्तार से समझने के लिए भैरउ राग में इस शब्द के साथ लिखा हुआ मेरा नोट पढ़ें।)

कबीर जी हिन्दू के जिस 'राम नाम' का निषेध कर रहे हैं, उसी 'नाम अधार' के सम्बन्ध में रविदास जी कहते हैं कि 'पारु कैसे पाइबो रे'।

इसलिए, यह 'राम नाम' कौन-सा है ? यह है 'अवतारी राम का नाम', यह है अवतार भक्ति। शास्त्रों के विभाजन के अनुसार दान आदि

सत्युग का धर्म, यज्ञ त्रेता का धर्म, देवताओं की पूजा, द्वापर का धर्म तथा अवतार भक्ति (मूर्ति-पूजा) कलियुग का धर्म है। पर रविदास जी लिखते हैं कि इन चारों ही धर्मों को कमाने से:

प्रेम भगति नही ऊपजै, ता ते रविदास उदास॥

पद अर्थ : सतजुगि–सत्युग में। सतु–दान, शास्त्रों की विधि के अनुसार किये गये दानादि कर्म। तेता जगी–त्रेता युग यज्ञों में (प्रवृत्त है)। दुआपरि–द्वापर में। पूजाचार–पूजा आचार, देवताओं की पूजा आदि कर्म। दिड़े–दृढ़ कर रहे हैं, ज़ोर दे रहे हैं। नाम अधार–(श्री राम तथा श्री कृष्ण अवतार के) नाम का अवलम्ब, श्री रामचन्द्र तथा श्री कृष्ण जी की मूर्ति में ध्यान लगाकर उनके नाम का जाप।१।

पारु–संसार-समुद्र का अन्तिम किनारा। पाइबो–पाओगे। रे–हे भाई ! हे पण्डित ! मो सउ–मुझे। कोऊ–इन कर्म-काण्डी पण्डितों में से कोई भी। आवागवनु–जन्म-मरन का चक्र। बिलाइ–दूर हो जाए।१। रहाउ।

बहु बिधि–कई तरीकों से। बिधि–विधि, तरीका। धर्म शास्त्रों के अनुसार बताये हुए प्रत्येक वर्ण आश्रम के अलग-अलग कर्त्तव्य। निरूपीऐ–निरूपण किये गये हैं। सभ लोइ–समूह संसार। करता दीसै–उन धार्मिक रस्मों को करता हुआ दिखाई दे रहा है। जिह साधे–जिस के करने से, जिस धार्मिक रस्म के करने से। सिधि–सिद्धि, कामयाबी, मानव-जन्म के मनोरथ की सफलता।२।

करम–वे धार्मिक रस्में जो शास्त्रों ने नियत की हैं। अकरम–अ+करम, वे कर्म जो शास्त्रों द्वारा वर्जित हैं। सुनि–सुनकर। संसा–सहम, फ़िक्र। हिरै–दूर करे।३।

बाहरु–(शरीर का) बाह्य भाग (*नोट :* शब्द 'बाहरु' तथा 'बाहरि' में अन्तर याद रखने योग्य है। 'बाहरु' संज्ञा है तथा 'बाहरि' क्रिया विशेषण है)। उदकि–उदक के साथ, पानी के साथ। पखारीऐ–धो दें। घट–हृदय। बिबिधि–वि+विधि, विविध, अनेक प्रकार के। होइबो–होवोगे। कुंचर–हाथी। बिउहार–व्यवहार, काम।४।

रवि–सूर्य। रजनी–रात। जथा गति–जैसे दूर हो जाती है। मानो–जानो। कनक–सोना। होत नही बार–देर नहीं लगती।५।

परम परस–सभी पारसों से अच्छा पारस। भेटीऐ–मिल जाए। लिलाट–ललाट पर, माथे पर। उनमन–(Skt. उन्मनस् (adj.) anxious, eager, impatient) तांघ से भरा हुआ। उनमन मन–वह हृदय जिसमें प्रभु-प्रीतम को मिलने की तांघ (इच्छा) पैदा हो गई है। मन ही–मन में ही, अन्दर ही, अर्न्तात्मा में ही। बजर–कठोर, सख़्त, पक्के। कपाट–किवाड़।६।

जुगति–तरीका, साधन। भगति जुगति–बन्दगी-रूप साधन (प्रयुक्त करके)। मति–बुद्धि, अक्ल। सति करी–पक्की कर ली, दृढ़ कर ली, माया में भटकने से रोक ली। काटि–काटकर। सोई–वही मनुष्य। बसि–बसकर, टिककर, प्रभु की याद में टिककर। रसि–आनन्द के साथ। मन मिले–मन ही में मिले, अर्न्तात्मा में ही प्रभु को मिल लेते हैं। निरगुन–माया के तीन गुणों से रहित प्रभु। गुन बिचार–गुणों की विचार, गुणों की याद।७।

निग्रह–रोकना, वश में करना, मन को विकारों की तरफ़ से रोकना। टारी न टरै–टालने से टलती नहीं। भ्रम फास–भटकन की फाही। प्रेम भगति–प्रभु की प्रेम-भरी याद। उदास–इन यत्नों से उपराम, इन कर्मों-धर्मों से उपराम।८।

अर्थ : (हे पण्डित जी ! आप कहते हैं कि प्रत्येक युग में अपना अपना कर्म ही प्रधान है, इसके अनुसार) सत्युग में दान आदि प्रधान था, त्रेता युग यज्ञों में प्रवृत्त रहा, द्वापर में देवताओं की पूजा प्रधान-कर्म था; (इस तरह आप कहते हैं कि) तीनों युग इन तीन कर्मों-धर्मों पर ज़ोर देते हैं तथा अब कलियुग में सिर्फ़ (राम) नाम का आसरा है।१।

पर, हे पण्डित ! (इन युगों के विभाजित कर्मों-धर्मों के साथ संसार-समुद्र का) अन्तिम छोर कैसे ढूँढेंगे ? (आप में से) कोई भी मुझे ऐसा काम समझाकर नहीं बता सका, जिसकी सहायता से (मनुष्य का) जन्म-मरन का चक्र समाप्त हो सके।१। रहाउ।

(शास्त्रों के अनुसार) कई तरीकों से वर्णों तथा आश्रमों के कर्त्तव्यों

को नियत किया गया है, (इन शास्त्रों को मानने वाला) समूह जगत् यही नियत किये गये कर्म-धर्म करता दिखाई दे रहा है। पर किस कर्म-धर्म के करने से (आवागमन से) मुक्ति मिल सकती है ? वह कौन-सा कर्म है जिस को करने से जन्म-मनोरथ सफल होता है ? (यह बात आप नहीं बता सके)।२।

वेदों तथा पुराणों को सुनकर (अधिकाधिक) शंका बढ़ती है। यही विचार किया जाता है कि कौन-सा कर्म शास्त्रों के अनुकूल है तथा कौन-सा कर्म शास्त्रों द्वारा वर्जित है। (वर्ण-आश्रमों के कर्म-धर्म करते हुए भी, मनुष्य के) हृदय में सहम तो बना ही रहता है, (फिर) वह कौन-सा कर्म-धर्म (आप बताते हो) जो मन का अहंकार दूर करे ? ।३।

(हे पण्डित ! आप तीर्थ स्नान पर ज़ोर देते हो, पर तीर्थों पर जाकर तो शरीर का) बाह्य भाग ही पानी के साथ धोया जाता है, हृदय में कई प्रकार के विचार टिके ही रहते हैं, (इस तीर्थ-स्नान से) कौन पवित्र हो सकता है ? यह पवित्रता तो ऐसी ही होती है जैसे हाथी का स्नान-कर्म।४।

(पर हे पण्डित !) समूह संसार यह बात जानता है कि सूर्य के निकलने पर कैसे रात का अन्धेरा दूर हो जाता है। यह बात भी याद रखने वाली है कि तांबे के पारस के साथ छूने से उसके सोना बनने में देर नहीं लगती।५।

(इसी तरह) यदि पूर्व जन्म के भाग्य जाग जायें तो सतिगुरु मिल जाता है, जो सभी पारसों से श्रेष्ठ पारस है। (गुरु की कृपा से) मन में परमात्मा को मिलने की इच्छा पैदा हो जाती है, वह अन्र्तात्मा में ही प्रभु से मिलाप प्राप्त कर लेता है, मन के कठोर किवाड़ खुल जाते हैं।६।

जिस मनुष्य ने प्रभु की भक्ति में जुड़कर (इस भक्ति की बरकत से) भटकन, विकार तथा माया के बन्धनों को काटकर अपनी बुद्धि को माया में लिप्त होकर भटकने से रोक लिया है, वही मनुष्य (प्रभु की याद में) टिक कर आनन्द से (प्रभु का) अन्र्तात्मा में ही मिलाप प्राप्त कर लेता है तथा उस एक परमात्मा के गुणों की याद में रहता है जो माया के तीन गुणों से परे है।७।

(प्रभु की याद के बिना) मन को विकारों से रोकने के जो अन्य अनेक

यत्न भी किये जायें, (तो भी विकारों में) भटकन की फाही टाले नहीं टलती। (कर्म-काण्ड के) इन प्रयत्नों से प्रभु की प्यार भरी याद (हृदय में) पैदा नहीं हो सकती। इसीलिए मैं रविदास (इन कर्मों-धर्मों से) उपराम (विरक्त) हूँ।८।१।

शब्द का भाव : यह बातें ग़लत है कि हृदय में परमात्मा की प्रेम-भक्ति पैदा करने के लिए प्रत्येक युग में मनुष्य के लिए भिन्न-भिन्न कर्म-धर्म प्रधान रहे हैं। कोई दान, यज्ञ, देव-पूजा, अवतार-भक्ति, तीर्थ-स्नान मनुष्य को माया के बन्धन से बचा नहीं सकता तथा न ही प्रभु-चरणों में जोड़ संकता है।

नोट : गुरुबाणी का यही आशय है कि चाहे कोई नियत किया गया सत्युग है, चाहे त्रेता या द्वापर तथा चाहे कलियुग है, दुनिया के विकारों से बचकर जीवन का सही मार्ग ढूँढने के लिए परमात्मा की भक्ति ही एक मात्र ठीक उपाय है।

१ओ सतिगुरप्रसादि॥

आसा बाणी स्री रविदास जीउ की

म्रिग मीन भ्रिंग पतंग कुंचर, एक दोख बिनास॥
पंच दोख असाध जा महि, ता की केतक आस॥१॥
माधो, अबिदिआ हित कीन॥
बिबेक दीप मलीन॥१॥ रहाउ॥
त्रिगद जोनि अचेत, संभव पुंन पाप असोच॥
मानुखा अवतार दुलभ, तिही संगति पोच॥२॥
जीअ जंत जहा जहा लगु, करम के बसि जाइ॥
काल फास अबध लागे, कछु न चलै उपाइ॥३॥
रविदास दास, उदास, तजु भ्रमु,
तपन तपु गुर गिआन॥
भगत जन भै हरन, परमानंद करहु निदान॥४॥१॥

पद अर्थ : म्रिग–हिरण। मीन–मच्छली। भ्रिंग–भौरा। पतंग–पतंगा। कुंचर–हाथी। दोख–दोष, ऐब (हिरण को घंडेहेड़े का नाद सुनने का रस, मीन को जीभ का स्वाद, भंवरे को फूल सूंघने की आदत, पतंगे का दीपक की लौ पर जल मरना, आँखों से देखने का चस्का, हाथी को काम-वासना)। असाध–असाध्य, जो वश में न आ सकें। जा महि–जिस मनुष्य में।१।

माधो–(माधव) हे माया के पति प्रभु ! अबिदिआ–अज्ञानता। हित–मोह, प्यार। मलीन–मैला, धुंधला।१। रहाउ।

त्रिगद जोनि–उन योनियों के जीव जो टेढ़े होकर चलते हैं, पशु आदि। अचेत–ग़ाफ़िल, प्रभु की तरफ़ से असावधान, विचारहीन। असोच–विचार

रहित, बेपरवाह। संभव–सम्भव, मुमकिन। अवतार–जन्म। पोच–नीच। तिही–इसकी भी।२।

जाइ–जन्म लेकर। अबध–अ+बध, जो नाश न हो सके। उपाइ–हीला, उपाय।३।

निदान–आख़िर। उदास–विकारों से उपराम।४।

अर्थ : हे प्रभु ! जीव अज्ञानता के साथ प्यार कर रहे हैं, इसलिए इनके विवेक का दीपक धुंधला हो गया है, (भाव, परखहीन हो रहे हैं, भले बुरे की पहचान नहीं कर सकते)।१। रहाउ।

हिरण, मच्छली, भंवरा, पतंगा, हाथी–एक-एक दोष के कारण इनका नाश हो जाता है, पर इस मनुष्य में ये पाँचों असाध्य रोग हैं, इसके बचने की कब तक आशा हो सकती है ?।१।

पशु आदि टेढ़ी योनियों के जीव विचारहीन हैं, उनका पाप-पुण्य की तरफ़ से बेपरवाह रहना स्वाभाविक है, पर मनुष्य को यह जन्म कठिनता से मिला है, इसकी संगति भी नीच विकारों के साथ ही है (इसको तो विचार करना चाहिए था)।२।

किये कर्मों के आधीन जन्म लेकर जीव जहाँ-जहाँ भी हैं, सभी जीव जन्तुओं को काल की (आत्मिक मौत की) ऐसी फाही पड़ी हुई है जो काटी नहीं जा सकती, इनके वश में इसका कुछ उपाय नहीं है।३।

हे रविदास ! हे प्रभु के दास रविदास ! तू तो विकारों के मोह से निकल, यह भटकन छोड़ दे, सतिगुरु का ज्ञान अर्जित कर, यही सर्वोत्तम तप है। भक्त-जनों के भय को दूर करने वाले हे प्रभु ! आख़िर मुझे रविदास को भी (अपने प्यार का) परम आनन्द प्रदान करें (मैं तेरी शरण में आया हूँ)।४।१।

भाव : एक विकार दूर नहीं किया जा सकता, मनुष्य तो पाँचों विकारों में लिप्त है। अपने उद्यम से मनुष्य अपनी समझ का दीपक साफ़ नहीं रख सकता। प्रभु की शरण में आने से ही विकारों से बच सकता है।

आसा॥

संत तुझी तनु, संगति प्रान॥
सतिगुर गिआन जानै संत देवादेव॥१॥
संत ची संगति, संत कथा रसु,
संत प्रेमु, माझै दीजै, देवादेव॥१॥ रहाउ॥
संत आचरण, संत चो मारगु, संत च ओल्हग ओल्हगणी॥२॥
अउर इक मागउ भगति चिंतामणि॥
जणी लखावहु असंत पापी सणि॥३॥
रविदासु भणै, जो जाणै सो जाणु॥
संत अनंतहि, अंतरु नाही॥४॥२॥

पद अर्थ : तुझी–तेरा ही। तनु–शरीर। प्रान–प्राण। जानै–जान लेता है, पहचान लेता है। देवादेव–हे देवताओं के देवता !।१।

ची–दी। रसु–अनंद। माझै–मुझे। दीजै–दे।१।रहाउ।

आचरण–आचरण, करणी। चो–का। मारगु–रास्ता, मार्ग। च–के। ओल्हग ओल्हगणी–दासों की सेवा। ओल्हग–दास। ओल्हगणी–सेवा।२।

चिंतामणि–मन-वान्छित फल देने वाली मणी। जणी–न। जणी लखावहु–न दिखाना। सणि–तथा।३।

भणै–कहता है। जाणु–अकलमन्द । अंतरु–अन्तर।४।

अर्थ : हे देवताओं के देवता प्रभु ! मुझे संतों की संगति प्रदान करें, कृपा करें, मैं संतों की प्रभु-कथा का रस ले सकूँ, मुझे संतों का (भाव, संतों के साथ) प्रेम (करने की दाति) दें।१।रहाउ।

हे देवों के देव प्रभु ! सतिगुरु की राय लेकर संतों (की बड़ाई) को मनुष्य समझ लेता है कि संत तेरा ही रूप है, संतों की संगति तेरी ही जान है।१।

हे प्रभु ! मुझे संतों (वाला) आचरण, संतों का मार्ग, संतों के दासों की सेवा प्रदान करें।२।

मैं तुझ से एक अन्य (दाति भी) मांगता हूँ, मुझे अपनी भक्ति दें, जो मनोवान्छित फल देने वाली मणि है, मुझे विकारग्रस्त तथा पापियों का दर्शन न कराना।३।

रविदास कहता है–असल बुद्धियुक्त वह मनुष्य है जो यह जानता है कि संतों तथा अनन्त प्रभु में कोई अन्तर नहीं है।४।२।

भाव : प्रभु-दर पर अरदास–हे प्रभु ! साध-संगति का मिलाप प्रदान करें।

आसा

तुम चंदन हम इरंड बापुरे, संगि तुमारे बासा॥
नीच रूख ते ऊच भए है गंध सुगंध निवासा॥१॥
माधउ, सत संगति सरनि तुम्हारी॥
हम अउगन तुम्ह उपकारी॥१॥ रहाउ॥
तुम मखतूल सुपेद सपीअल, हम बपुरे जस कीरा॥
सत संगति मिलि रहीऐ माधउ, जैसे मधुप मखीरा॥२॥
जाती ओछा, पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा॥
राजा राम की सेव न कीन्ही, कहि रविदास चमारा॥३॥३॥

पद अर्थ : बापुरे–विचारे, निमाणे। संगि तुमारे–तेरे साथ। बासा–वास। रूख–वृक्ष। सुगंध–वासना। निवासा–बस गई है।१।

माधउ–(Skt. माधव–माया लक्ष्म्या धवः; मा–माया, लक्ष्मी। धव–पति। लक्ष्मी का पति, कृष्ण जी का नाम) हे माधो ! हे प्रभु ! अउगन–अवगुणयुक्त, मन्दकर्मी। उपकारी–उपकार करने वाला, कृपालु।१। रहाउ।

मखतूल–रेशम। सुपेद–सफ़ेद। सपीअल–पीला। जस–जैसे। कीरा–कीड़े। मिलि–मिलकर। रहीऐ–टिके रहें। मधुप–शहद की मक्खी। मखीर–शहद का छत्ता।२।

ओछा–नीच। पाती–पाति, कुल। राजा–स्वामी, नृप। कीन्ही–मैंने की। कहि–कहें, कहता है।३।

अर्थ : हे माधो ! मैंने तेरी साध संगति का सहारा लिया है (मुझे यहाँ से बिछड़ने मत देना), मैं मन्दकर्मी हूँ (तेरी सत्संगति छोड़कर फिर दुष्कर्मों की ओर चल पड़ता हूँ, पर) तू दयालु है (तू फिर जोड़ लेता है)।१। रहाउ।

हे माधो ! तू चन्दन का पेड़ है, मैं तुच्छ हरिण्ड हूँ (पर तेरी कृपा से) मुझे तेरे (चरणों) में रहने के लिए स्थान मिल गया है, तेरी सुन्दर मीठी सुगन्ध मेरे अन्दर बस गई है, अब मैं छोटे पेड़ से उच्च बन गया हूँ।१।

हे माधो ! तू सफ़ेद पीत (सुन्दर) रेशम है, मैं तुच्छ (उस) कीड़े की तरह हूँ (जो रेशम को छोड़कर बाहर निकल जाता है तथा मर जाता है); माधो ! (कृपा कर) मैं तेरी साधसंगति में जुड़ा रहूँ, जिस तरह शहद की मक्खियाँ शहद के छत्ते में (टिकी रहती हैं)।२।

रविदास चमार कहता है–(लोगों की दृष्टि में) मेरी जाति निम्न, मेरा कुल निम्न, मेरा जन्म निम्न है (पर, हे माधो ! मेरी जाति, कुल तथा जन्म सत्य में निम्न रह जाएंगे) यदि मैंने, हे मेरे स्वामी प्रभु ! तेरी भक्ति न की।३।३।

नोट : इस शब्द में प्रयुक्त शब्द 'राजा राम' से यह अनुमान लगाना ग़लत है कि रविदास जी श्री राम-अवतार के पुजारी थे। जिस सर्वव्यापक स्वामी को वे अन्तिम पंक्ति में 'राजा राम' कहते हैं उसको वे 'रहाउ' की पंक्ति में 'माधउ' कहते हैं। यदि अवतार-पूजा की संकीर्णता की ओर जाएं तो शब्द 'माधउ' कृष्ण जी का नाम है। श्री रामचन्द्र का पुजारी अपने पूज्य अवतार को श्री कृष्ण जी के किसी नाम से सम्बोधित नहीं कर सकता।

रविदास जी की दृष्टि में 'राम' तथा 'माधउ' उस प्रभु के ही नाम हैं, जो माया में व्यापक (राम) है तथा माया का स्वामी (माधउ) है।

भाव : प्रभु-दर पर अरदास–हे प्रभु ! साध-संगति की शरण में रख।

आसा

कहा भइओ, जउ तनु भइओ छिनु छिनु॥
प्रेमु जाइ, तउ डरपै तेरो जनु॥१॥
तुझहि चरन अरबिंद भवन मनु॥
पान करत पाइओ पाइओ रामईआ धनु॥१॥ रहाउ॥
संपति बिपति पटल माइआ धनु॥
ता महि मगन होत न तेरो जनु॥२॥
प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन॥
कहि रविदास छूटिबो कवन गुन॥३॥४॥

पद अर्थ : कहा भइओ–क्या हुआ ? कोई परवाह नहीं। जउ –यदि। तनु–शरीर। छिनु छिनु–थोड़ा-थोड़ा, टुकड़े-टुकड़े। तउ–तब, तब ही। डरपै–डरता है। जनु–दास।१।

तुझहि–तेरे। अरबिंद–(Skt. अरविन्द) कमल फूल। चरन अरबिंद–चरण कमल, कमल के फूलों जैसे सुन्दर चरण। भवनु–टिकाना, भवन। पान करत–पीते हुए, पान करते हुए। पाइओ पाइओ–मैंने पा लिया है, मैंने पा लिया है। रामईआ धनु–सुन्दर राम का (नाम-रूपी) धन।१। रहाउ।

संपति–(Skt. संपत्ति–prosperity, increase of wealth) धन की बहुलता। बिपति–(Skt. विपत्ति–A calamity, misfortune) विपत्ति, मुसीबत। पटल–पर्दा। ता महि–इन में।२।

जेवरी–रस्सी । कहि–कहे, कहता है। छूटिबो–छुटकारा पाने का। कवन गुन–क्या लाभ ? क्या आवश्यकता ? मुझे ज़रूरत नहीं, मेरा मन नहीं करता।३।

अर्थ : (हे सुन्दर राम !) मेरा मन कमल फूल के समान सुन्दर तेरे चरणों को अपने रहने का स्थान बना चुका है। (तेरे चरण कमलों में से नाम-रस) पीते-पीते मैंने प्राप्त कर लिया है, मैंने प्राप्त कर लिया है, तेरा नाम-धन।१। रहाउ।

(यह नाम-धन प्राप्त करके अब) यदि मेरा शरीर नष्ट भी हो जाए तब भी मुझे कोई परवाह नहीं। हे राम ! तेरा सेवक तब ही घबरायेगा यदि (इसके मन से तेरे चरणों का) प्यार दूर होगा।१।

संपति, विपत्ति, धन–ये माया के पर्दे हैं (जो मनुष्य की बुद्धि पर पड़े रहते हैं), हे प्रभु ! तेरा सेवक (माया के) इन (पर्दों) में (अब) नहीं फंसता।२।

रविदास कहता है–हे प्रभु ! (मैं) तेरा दास तेरे प्यार की रस्सी से बंधा हुआ हूँ। इसमें से निकलने को मेरा मन नहीं करता।३।४।

शब्द का भाव : जिस मनुष्य को प्रभु-चरणों का प्यार प्राप्त हो जाए, दुनिया के हर्ष शोक आदि उसको प्रभावित नहीं करते।

आसा

हरि हरि, हरि हरि, हरि हरि हरे॥
हरि सिमरत, जन गए निसतरि तरे॥१॥ रहाउ॥
हरि के नाम कबीर उजागर॥
जनम जनम के काटे कागर॥१॥
निमत, नामदेउ दूधु पीआइआ॥
तउ जग जनम संकट नही आइआ॥२॥
जन रविदास राम रंगि राता॥
इउ, गुर परसादि नरक नही जाता॥३॥५॥

पद अर्थ : हरि.....हरे हरि सिमरत–बार-बार, श्वास-श्वास हरि-नाम का स्मरण करते हुये। जन–(हरि के) दास। गए तरे–तर गये, संसार-समुद्र से पार हो गये। निसतरि–अच्छी तरह, पूर्णतः पार हो गये।१। रहाउ।

हरि के नाम–हरि-नाम की बरकत से। उजागर–प्रकाशित, प्रसिद्ध। कागर–काग़ज़। जनम जनम के कागर–कई जन्मों में किये कर्मों के लेख।१।

निमत–(Skt. निमित्त The instrumental or efficient cause. यह शब्द किसी 'समास' के अन्त में प्रयुक्त किया जाता है तथा इसका अर्थ

होता है 'इस कारण से'; जैसे किन्निमित्तोयमातंक:, भाव, इस रोग का क्या कारण है) के कारण, की बरकत से । (हरि के नाम) निमत–हरि नाम की बरकत से। तउ–तब, हरि-नाम के सिमरन से। संकट–संकट, कष्ट।२।

राम रंगि–प्रभु के प्यार में। राता–रंगा हुआ। इउ–इस तरह, प्रभु के रंग में रंगे जाने से। परसादि–कृपा से।३।

अर्थ : श्वास-श्वास हरि-नाम का सिमरन करने से हरि के सेवक (संसार-समुद्र से) पूर्णतः पार हो जाते हैं ।१। रहाउ।

हरि के नाम के सिमरन की बरकत से कबीर (भक्त, संसार में) प्रसिद्ध हुआ, तथा उसके जन्मों-जन्मों (कई जन्मों) के किये कर्मों के लेखे समाप्त हो गये।१।

हरि-नाम सिमरन के कारण ही नामदेव ने (गोबिन्द राय को) दूध पिलाया था, तथा नाम जपने से ही वह संसार के जन्मों के कष्टों में नहीं पड़ा।२।

हरि का दास रविदास (भी) प्रभु-प्रेम में रंगा गया है। इस रंग की बरकत से, सतिगुरु जी की कृपा के कारण, रविदास नर्कों में नहीं पड़ेगा।३।५।

नोट : प्रत्येक शब्द का मुख्य भाव 'रहाउ' की पंक्ति में होता है। यहाँ पर हरि-सिमरन का महत्त्व बताता है कि जिन लोगों ने श्वास-श्वास प्रभु को याद रखा, वे संसार की माया में लिप्त नहीं हुए। यह सिद्धान्त बताकर भक्तों का दृष्टान्त देते हैं। कबीर ने भक्ति की, वह जगत् में प्रसिद्ध हुआ, नामदेव ने भक्ति की तो उसने प्रभु को वश में कर लिया।

इस विचार में दो बातें बिल्कुल स्पष्ट हैं। एक यह कि नामदेव ने किसी ठाकुर-मूर्ति को दूध नहीं पिलाया, दूसरी दूध पिलाने के बाद नामदेव को भक्ति की लग्न नहीं लगी, पहले ही वे पूर्ण भक्त थे। किसी मूर्ति को दूध पिलाकर, किसी मूर्ति की पूजा करने से नामदेव भक्त नहीं बना, अपितु श्वास-श्वास हरि-सिमरन की ही यह बरकत थी कि प्रभु ने कई कौतुक दिखाकर नामदेव के कई कार्य संवारे तथा उसको संसार में प्रसिद्ध किया।

भाव : नाम सिमरन की बरकत से निम्न जाति वाले लोग भी संसार-समुद्र से पार हो जाते हैं।

माटी को पुतरा, कैसे नचतु है॥
देखै देखै सुनै बोलै, दउरिओ फिरतु है॥१॥ रहाउ॥
जब कछु पावै, तब गरबु करतु है॥
माइआ गई तब रोवनु लगतु है॥१॥
मन बच क्रम रस कसहि लुभाना॥
बिनसि गइआ जाइ कहूं समाना॥२॥
कहि रविदास बाजी जगु भाई॥
बाजीगर सउ मोहि प्रीति बनि आई॥३॥६॥

पद अर्थ : को–का। पुतरा–पुतला। कैसे–कैसे, आश्चर्य रूप से, हास्यास्पद होकर।१। रहाउ।

कछु–कुछ माया। पावै–प्राप्त करता है। गरबु–अहंकार। गई–चले जाने पर, खो जाने पर। रोवनु लगतु है–रोता है, दुःखी होता है।१।

बच–वचन, बातें। क्रम–कर्म। रस कसहि–रसों में, स्वादों में। लुभाना–मस्त, लुब्ध हुआ। बिनसि गइआ–जब यह पुतला नष्ट हो गया। जाइ–जीव यहाँ से जाकर। कहूं–(प्रभु चरणों के स्थान पर) किसी अन्य स्थान पर।२।

कहि–कहे, कहता है। भाई–हे भाई ! सउ–साथ। मोहि–मुझे (अक्षर 'म' के साथ दो मात्राएं (ो) और (ु) हैं। असल शब्द है 'मोहि', लेकिन यहाँ पढ़ना है 'मुहि')।३।

अर्थ : (माया के मोह में फंसकर) यह मिट्टी का पुतला कैसे हास्यास्पद स्थिति में नाच रहा है (भटक रहा है); (माया को ही) चारों तरफ़ ढूँढता है, (माया की ही बातें) सुनता है (भाव, माया की बातें ही सुननी इसको अच्छी लगती है), (माया कमाने की ही) बातें करता है, (हर समय माया के लिए ही) दौड़ा फिरता है।१। रहाउ।

जब (इसको) कुछ धन मिल जाता है तो (यह) अहंकार करने लग

जाता है; पर यदि खो जाए तो रोता है, दुःखी होता है।१।

अपने मन द्वारा, वचनों द्वारा, कर्मों द्वारा चस्कों में फंसा हुआ है, आख़िर मौत आने पर जब यह शरीर गिर पड़ता है तो जीव (शरीर में से) जाकर (प्रभु-चरणों में पहुँचने के स्थान पर) कहीं कुस्थान पर ही टिकता है।२।

रविदास कहता है–हे भाई ! यह जगत् एक तमाशा ही है, मेरी प्रीति तो (जगत् की माया के स्थान पर) इस तमाशे के बनाने वाले के साथ लग गई है। (इसलिए मैं इस हास्यास्पद नाच से बच गया हूँ)।३।६।

शब्द का भाव : माया में फंसा हुआ जीव भटकता है तथा हास्यास्पद होता है; इस खुआरी से सिर्फ़ वही बचता है जो माया के रचने वाले परमात्मा से प्यार करता है।

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

गूजरी स्री रविदास जी के पदे घरु ३

दूधु त बछरै थनहु बिटारिओ॥
फूलु भवरि, जलु मीनि बिगारिओ॥१॥
माई गोबिंद पूजा कहा लै चरावउ॥
अवरु न फूलु, अनूपु न पावउ॥१॥ रहाउ॥
मैलागर बेर्हे है भुइअंगा॥
बिखु अंम्रितु बसहि इक संगा॥२॥
धूप दीप नईबेदहि बासा॥
कैसे पूज करहि तेरी दासा॥३॥
तनु मनु अरपउ पूज चरावउ॥
गुर परसादि निरंजनु पावउ॥४॥
पूजा अरचा आहि न तोरी॥
कहि रविदास कवन गति मोरी॥५॥१॥

पद अर्थ : बछरै–बछड़े ने। थनहु–थनों से (ही)। बिटारिओ–जूठा कर दिया है। भवरि–भंवरे ने। मीनि–मीन ने, मछली ने।१।

माई–हे माँ ! कहा–कहाँ से ? लै–लेकर। चरावउ–मैं भेंट करूँ। अनूपु–(अन+ऊपु) जिस के समान कोई नहीं, सुन्दर। न पावउ–मैं हासिल नहीं कर सकूँगा।१। रहाउ।

मैलागर–(मलय+अगर) मलय पर्वत पर उगे हुए चन्दन के वृक्ष। बेर्हे–लपेटे हुए। भुइअंगा–सर्प। बिखु–ज़हर। इक संगा–इक्ठे।२।

दीप–दीपक, दीया। नईबेद–(संस्कृत–नैवेद्य An offering of eatables presented to a deity or idol) किसी मूर्ति या देवी-देवता

के आगे खाने वाली वस्तुओं की भेंट। बासा–वासना, सुगन्धि।३।

अरपउ–मैं अर्पण कर दूँ, मैं भेंट करूँ। चरावउ–भेंट करूँ।४।

अरचा–मूर्ति आदि की पूजा, मूर्ति आदि के सम्मुख सिर झुकाना, मूर्ति का शृंगार करना। आहि न–नहीं हो सकता। कहि–कहै, कहता है। कवन गति–की हाल ?।५।

अर्थ : दूध तो थनों से ही बछड़े ने जूठा कर दिया, फूल भंवरे ने (सूँघकर) तथा पानी मछली ने ख़राब कर दिया, (इसलिए दूध, फूल, पानी ये तीनों ही जूठे हो जाने के कारण प्रभु के आगे भेंट करने योग्य नहीं रह गये)।१।

हे माँ ! गोबिन्द की पूजा करने के लिए मैं कहाँ से कोई चीज़ लेकर भेंट करूँ ? कोई अन्य (पवित्र) फूल (आदि मिल) नहीं (सकता)। क्या मैं इस (कमी के कारण) उस सुन्दर प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकूँगा ?।१।रहाउ।

चन्दन के वृक्षों पर साँप लिपटे हुए हैं (तथा उन्होंने चन्दन को जूठा कर दिया है), ज़हर तथा अमृत (भी समुद्र में) एक साथ ही रहते हैं।२।

सुगन्ध आ जाने से धूप, दीप तथा नैवेद्य भी जूठे हो जाते हैं, (फिर हे प्रभु ! जे तेरी पूजा इन वस्तुओं से ही हो सकती है तो ये जूठी वस्तूएं तेरे आगे रखकर) तेरे भक्त कैसे तेरी पूजा करें ?।३।

(हे प्रभु !) मैं अपना तन तथा मन अर्पण करता हूँ, तेरी पूजा के रूप में भेंट करता हूँ। (इस भेंट के साथ ही) सतिगुरु की कृपा तथा बरकत के साथ तुझे माया रहित को ढूँढ सकता हूँ।४।

रविदास कहता है–(हे प्रभु यदि पवित्र (सुच्चा) दूध, फूल, धूप, चन्दन तथा नैवेद्य आदि के भेंट से ही तेरी पूजा हो सकती तो कहीं भी ये वस्तुएं पवित्र (सुच्ची) न मिलने के कारण) मुझसे तेरी पूजा तथा तेरी भक्ति हो ही न सकती, तो फिर (हे प्रभु !) मेरा क्या हाल होता ?।५।१।

भाव : लोग देवी देवताओं की मूर्तियों को अपनी तरफ़ से पवित्र जल, फूल तथा दूध आदि से प्रसन्न करने का यत्न करते हैं, पर ये वस्तुएं तो पहले ही जूठी हो जाती हैं। परमात्मा ऐसी वस्तुओं की भेंट से प्रसन्न नहीं होता। वह तो तन-मन की भेंट मांगता है।

१ओ सतिगुरप्रसादि॥

रागु सोरठि बाणी भगत रविदास जी की

जब हम होते तब तू नाही अब तू ही मै नाही॥
अनल अगम जैसे लहरि मइ ओदधि,
जल केवल जल मांही॥१॥
माधवे किआ कहीऐ भ्रमु ऐसा॥
जैसा मानीऐ होइ न तैसा॥१॥ रहाउ॥
नरपति एकु सिंघासनि सोइआ सुपने भइआ भिखारी॥
अछत राज बिछुरत दुखु पाइआ, सो गति भई हमारी॥२॥
राज भुइअंग प्रसंग जैसे हहि अब कछु मरमु जनाइआ॥
अनिक कटक जैसे भूलि परे,
अब कहते कहनु न आइआ॥३॥
सरबे एकु अनेकै सुआमी, सभ घट भुोगवै सोई॥
कहि रविदास हाथ पै नैरै सहजे होइ सु होई॥४॥१॥

पद अर्थ : जब–जब तक। हम–हम, अहंकार। होते–होते हैं। मै–मेरी, अहंभाव। अनल–(Skt. अनिल) हवा। अनल अगम–भारी अंधेरी (के कारण)। लहरि मइ–लहरमय,(सं: मय–जिस शब्द के अन्त में शब्द 'मय' का प्रयोग किया जाए, उसके अर्थ में 'बहुलता' का विचार बढ़ाया जाता है; जैसे दया मय–दया से भरपूर) लहरों से पूर्ण, लहरों से युक्त। ओदधि–(Skt. उदधि) समुद्र।१।

माधवे–हे माधो ! (*नोट :* शब्द 'माधो' भक्त रविदास जी का विशेष प्रिय शब्द है, अनेक बार परमात्मा के लिए इसी शब्द का प्रयोग करते हैं;

संस्कृत की धार्मिक पुस्तकों में यह नाम कृष्ण जी का है। यदि रविदास जी श्री रामचन्द्र के उपासक होते तो इस शब्द का वे प्रयोग न करते)। किआ कहीऐ–क्या कहें ? कहा नहीं जा सकता। भ्रमु–संदेह। मानीऐ–माना जा रहा है, विचार बनाया जा रहा है।१। रहाउ।

नरपति–राजा। सिंघासनि–सिंहासन पर। भिखारी–भिखारी। अछत–होते हुए भी। गति–हालत।२।

राज–रज्जु, रस्सी। भुइअंग–साँप। प्रसंग–वार्त्ता। मरमु–भेद। कटक–कड़े। कहते–कहते हुए।३।

सरबे–सभी में। अनेकै–अनेक रूप होकर। भोगवै–(*नोट :* अक्षर 'भ' के साथ दो मात्राएं (ो) और (ु) हैं, असल शब्द है 'भोगवै', पर यहाँ पढ़ना है 'भुगवै') भोग रहा है, मौजूद है। पै–से। सहजे–उसकी रज़ा में, सहज ही।४।

अर्थ : (हे माधो !) जब तक हम जीवों के अन्दर अहंकार रहता है तब तक तू (हमारे अन्दर) प्रगट नहीं होता, पर जब तू प्रत्यक्ष होता है तब हमारी 'मैं' दूर हो जाती है। (इस 'मैं' के हटने से यह समझ आ जाती है) कि जैसे बड़ा तूफ़ान आने से समुद्र लहरों से नकानक भर जाता है पर असल में वे (लहरें समुद्र के) पानी में पानी ही है (वैसे ये सभी जीव जन्तु तेरा अपना ही विकास है)।१।

हे माधो ! हम जीवों को कुछ ऐसा संदेह पड़ा हुआ है कि बयान नहीं किया जा सकता। हम जो यह मान बैठे हैं (कि जगत् का तेरे से कोई अलग अस्तित्व है), वह ठीक नहीं है।१। रहाउ।

(जैसे) कोई राजा अपने तख़्त पर सो जाए तथा स्वप्न में भिखारी बन जाए, राज्य होते हुए भी वह (स्वप्न में राज्य से) बिछुड़कर दुःखी होता है, वैसे ही (हे माधो ! तुझसे बिछुड़कर) हम जीवों का हाल हो रहा है।२।

जैसे रस्सी तथा साँप का दृष्टान्त है, जैसे सोने से बने हुए अनेकों कड़े देखकर संदेह हो जाए (कि सोना ही कई किस्मों का होता है, वैसे हमें संदेह बना हुआ है कि यह जगत् तेरे से अलग है), पर तूने मुझे अब

कुछ-कुछ भेद का ज्ञान करा दिया है। अब वह पुरानी भेद (अन्तर) की बात मुझ से कही नहीं जाती (भाव, अब मैं यह नहीं कहता कि जगत् का तुझ से अलग अस्तित्व है)।३।

(अब तो) रविदास कहता है कि वह प्रभु-पति अनेक रूप बनाकर सभी में एक स्वयं ही है, सभी घटों में आप ही बैठा जगत् के आनन्द का भोग कर रहा है (भाव, जगत् का आनन्द ले रहा है)। (दूर नहीं) मेरे हाथ से भी नज़दीक है, जो कुछ (जगत् में) हो रहा है, उसकी ही रज़ा में हो रहा है।४।१।

शब्द का भाव : परमात्मा सर्वव्यापक है। पर जीव अपने अहंकार के कारण जगत् को उससे अलग हस्ती समझता है। जब तक अहंकार है तब तक अन्तर है।

जउ हम बांधे मोह फास, हम प्रेम बधनि तुम बाधे॥
अपने छूटन को जतनु करहु, हम छूटे तुम आराधे॥१॥
माधवे जानत हहु जैसी तैसी॥
अब कहा करहुगे ऐसी॥१॥ रहाउ॥
मीनु पकरि फांकिओ अरु काटिओ रांधि कीओ बहु बानी॥
खंड खंड करि भोजनु कीनो तऊ न बिसरिओ पानी॥२॥
आपन बापै नाही किसी को, भावन को हरि राजा॥
मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ, भगत नही संतापा॥३॥
कहि रविदास भगति इक बाढी,
अब इह का सिउ कहीऐ॥
जा कारनि हम तुम आराधे, सो दुखु अजहू सहीऐ॥४॥२॥

पद अर्थ : बांधे–बंधे हुए हैं। फास–फाही। बधनि–रस्सी से। तुम–तुझे। को–का।१।

जानत हहु–आप जानते हो। जैसी–जैसी (भक्तों की तेरे साथ प्रीति

है)। ऐसी–ऐसी प्रीति के होते हुए। कहा करहुगे–क्या करेगा ? इसके बिना और क्या करेगा ? (भाव, तू ज़रूर अपने भक्तों को मोह से बचाकर रखेगा)।१। रहाउ।

मीनु–मछली। पकरि–पकड़कर। फांकिओ–टुकड़े-टुकड़े कर दिये। रांधि कीओ–रांध ली, पका ली। बहु बानी–कई तरीकों से। खंड–टुकड़ा। तऊ–तो भी।२।

बापै–बाप की (मलकीयत)। भावन को–प्रेम का (बंधा हुआ)। राजा–जगत् का स्वामी (*नोट :* भक्त रविदास जी, अपनी बाणी में परमात्मा के नामों के साथ शब्द 'राजा' भी बहुत बार प्रयुक्त करते हैं, प्रत्येक कवि का अपना अपना स्वभाव होता है कि किसी विशेष शब्द का प्रयोग बार बार करना उन्हें प्रिय लगता है)। पटल–पर्दा। बिआपिओ–छाया हुआ है। संताप–(मोह का) क्लेश।३।

भगति इक–एक प्रभु की भक्ति। बाढी–बढ़ाई है, दृढ़ की है। अब.....कहीऐ–अब किसी के साथ इस बात को करने की ज़रूरत ही नहीं रही। जा कारनि–जिस (मोह से बचने) के कारण। अजहू–अब तक।४।

अर्थ : हे माधो ! तेरे भक्त जैसा प्यार तेरे साथ करते हैं वह तेरे से छिपा नहीं रह सकता (तू वह अच्छी तरह जानता है); ऐसी प्रीति के होते हुए तू ज़रूर उनको मोह से बचाए रखता है।१। रहाउ।

(इसलिए, हे माधो !) यदि हम मोह के बंधन में बंधे हुए थे, तो हमने तुझे अपने प्यार की रस्सी से बांध लिया है। हम तो (उस मोह के बंधन से) तेरे नाम का सिमरन करने से निकल आए हैं, तू हमारे प्रेम की जकड़न में से कैसे निकलेगा ? ।१।

(हमारा तेरे साथ प्रेम भी वैसा है जैसा मछली का पानी के साथ होता है, हमने मरकर भी तेरी याद नहीं छोड़नी), मछली को (पानी में से) पकड़कर फांके कर दें, टुकड़े कर दें तथा कई तरह पका लें फिर थोड़ा-थोड़ा करके खा लें, फिर भी उस मछली को पानी नहीं भूलता (जिस खाने वाले के पेट में जाती है उसको भी पानी की प्यास लगा देती है)।२।

जगत् का स्वामी हरि किसी के बाप का (पैतृक धन) नहीं है, वह तो प्रेम का बँधा हुआ है। (इस प्रेम से रहित समूह जगत्) मोह के पर्दे में फंसा पड़ा है, पर (प्रभु से प्रेम करने वाले) भक्तों को (इस मोह का) कोई क्लेश नहीं होता।३।

रविदास कहता है–(हे माधो !) मैंने एक तेरी भक्ति (अपने हृदय में) इतनी दृढ़ की हुई है कि मुझे अब किसी से यह शिकायत करने की ज़रूरत ही नहीं रह गई कि जिस मोह से बचने के लिए मैं तेरा सिमरन कर रहा थां, उस मोह का दुःख मुझे अब तक सहन करना पड़ रहा है (भाव, उस मोह का तो अब मेरे अन्दर नाम-निशान ही नहीं रह गया)।४।२।

शब्द का भाव : माया के मोह के बंधन को तोड़ने का एक ही तरीका है–प्रभु-चरणों का प्रेम।

दुलभु जनमु पुंन फल पाइओ, बिरथा जात अबिबेकै॥
राजे इंद्र समसरि ग्रिह आसन,
बिनु हरि भगति कहहु किह लेखै॥१॥
न बीचारिओ राजा राम को रसु॥
जिह रस अन रस बीसरि जाही॥१॥ रहाउ॥
जानि, अजान भए हम बावर, सोच असोच दिवस जाही॥
इंद्री सबल, निबल बिबेक बुधि,
परमारथ परवेस नही॥२॥
कहीअत आन, अचरीअत अन कछु,
समझ न परै अपर माइआ॥
कहि रविदास उदास दास मति,
परहरि कोपु करहु जीअ दइआ॥३॥३॥

पद अर्थ : दुलभु–दुर-लभ, जिसका प्राप्त होना बहुत कठिन है। पुंन–पुण्य। जात–जा रहा है। अबिबेकै–विचारहीनता के कारण, मूर्खता में।

समसरि–समान, बराबर। किह लेखै–कौन-से काम आए ? किसी काम के नहीं।१।

राजा–संसार का स्वामी। रसु–(मिलाप का) आनन्द। जिह रस–जिस आनन्द की बरकत से। अन रस–अन्य रस।१। रहाउ।

जानि–जान बूझकर, जानते समझते हुए। अजान–अनजान। बावर–पागल। सोच असोच–अच्छे बुरे विचार। दिवस–आयु के दिन। जाही–बीत रहे हैं। इंद्री–काम-वासना। सबल–स+बल, बलवान्। निबल–निर्बल, कमज़ोर। बिबेक बुधि–विवेक बुद्धि। परमारथ–परम+अर्थ, सबसे बड़ी आवश्यकता। परवेस–प्रवेश।२।

आन–कुछ और। अचरीअत–आचरण किया जाता है। अन कछु–कुछ अन्य, कुछ और। अपर–अपार, बली। उदास–उपराम, आशाओं से विरक्त। परहरि–त्याग कर, दूर कर के। कोपु–क्रोध। जीअ–प्राणों पर।३।

अर्थ : (हम मायाधारी जीवों ने) जगत्-प्रभु परमात्मा के नाम के उस आनन्द का कभी विचार नहीं किया, जिस आनन्द की बरकत से (माया के) अन्य सभी स्वाद (चस्के) दूर हो जाते हैं।१। रहाउ।

यह मानव-जन्म दुर्लभ है (पूर्व कृत) पुण्यों के फलस्वरूप हमें प्राप्त हुआ है पर हमारे अज्ञान के कारण यह व्यर्थ ही जा रहा है (हमने कभी सोचा ही नहीं कि) यदि प्रभु की बंदगी से हीन रहे तो (देवताओं के) राजा इन्द्र के स्वर्ग के समान भी महल किसी काम के नहीं हैं।१।

(हे प्रभु !) जानते समझते हुए भी हम बांवरे तथा मूर्ख बने हुए हैं, हमारी आयु के दिन (माया के ही) अच्छे बुरे विचारों में बीत रहे हैं, हमारी काम-वासना बढ़ रही है, विचारशक्ति क्षीण हो रही है, इस बात का कभी हमें ध्यान ही नहीं आया कि हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता क्या है ?।२।

हम कहते कुछ और हैं तथा करते कुछ और हैं, माया इतनी बलवान् हो रही है कि हमें (अपनी मूर्खता का) बोध ही नहीं होता। (हे प्रभु !) तेरा दास रविदास कहता है–मैं अब इस (मूर्खता) से उपराम हो गया हूँ, (मेरी मूर्खता पर) क्रोध न करना तथा मेरी आत्मा पर कृपा करना।३।३।

भाव : माया का मोह मनुष्य को वास्तविक लक्ष्य से दूर कर देता है।

सुखसागरु सुरतर चिंतामनि कामधेनु बसि जा के॥
चारि पदारथ असट दसा सिधि,
नव निधि कर तल ता के॥१॥
हरि हरि हरि न जपहि रसना॥
अवर सभ तिआगि बचन रचना॥१॥ रहाउ॥
नाना खिआन पुरान, बेद बिधि, चउतीस अखर मांही॥
बिआस बिचारि कहिओ परमारथु,
राम नाम सरि नाही॥२॥
सहज समाधि उपाधि रहत फुनि, बडै भागि लिव लागी॥
कहि रविदास प्रगासु रिदै धरि,
जनम मरन भै भागी॥३॥४॥

पद अर्थ : सुरतर–स्वंग के वृक्ष, ये गिनती में पाँच हैं–मन्दार, पारिजात, संतान, कल्प वृक्ष, हरिचन्दन।

(पंचैते देवतरवो, मंदारः पारिजातकः।
संतानः कल्पवृक्षश्च, पुंसि वा हरिचंदनम्।)

चिंतामनि–वह मणि जिससे मन की प्रत्येक इच्छा पूरी हो जाती है, ऐसा माना जाता है। कामधेनु–(काम–कामना। धेनु–गाय) प्रत्येक कामना पूरी करने वाली गाय (स्वर्ग में रहती है, ऐसा माना जाता है)। बसि–वश में। जा के–जिस परमात्मा के। चारि पदारथ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। असट दसा–(८+१०) अठारह। नव निधि–कुबेर देवते के नौ ख़ज़ाने। कर तल–हाथ की हथेलियों पर।१।

रसना–जीभ से। बचन रचना–थोथी बातें। तिआगि–त्याग कर।१। रहाउ।

नाना–कई किस्म के। खिआन–प्रसंग (Skt. आख्यान)। बेद

बिधि–वेदों में बताई गई धार्मिक विधियाँ। चउतीस अखर–(अ, इ, उ, स–४, पाँच वर्ग, क-वर्ग आदि–२५, य, र, ल, व, ह–५, कुल जोड़–३४। *नोट :* असल 'ह्रस्व' केवल तीन हैं, उ, अ, इ, बाकी के इनसे ही बने हैं मात्रायें लगाकर)। चउतीस अखर मांही–३४ अक्षरों में ही वाक्य रचना, बातें जो आत्मिक जीवन से नीचे हैं। परमारथु–परम+अरथ, सबसे ऊँची बात। सरि–बराबर।२।

सहज समाधि–मन का पूर्ण टिकाउ। सहज–आत्मिक स्थिरता। उपाधि–क्लेश। फुनि–फिर। बडै भागि–सौभाग्य से। कहि–कहे, कहता है। रिदै–हृद्रय में। भागी–दूर हो जाते हैं।३।

अर्थ : (हे पण्डित !) जो प्रभु सुखों का समुद्र है, जिस प्रभु के वश में स्वर्ग के पाँच वृक्ष, चिंतामणि तथा कामधेनु हैं, धर्म अर्थ काम मोक्ष चारे पदार्थ, अठारह सिद्धियाँ तथा नौ निधियाँ–ये सभी उसी के हाथ की हथेलियों पर हैं।१।

(हे पण्डित !) तू अन्य सभी निरर्थक बातें छोड़कर (अपनी) जीभ से हमेशा एक परमात्मा के नाम का सिमरन क्यों नहीं करता ?।१। रहाउ।

(हे पण्डित !) पुराणों के अनेक तरह के प्रसंग, वेदों की बताई हुई बातें, ये सभी वाक्-रचना ही हैं (अनुभवी ज्ञान नहीं, जो प्रभु के चरणों में जुड़ने से पैदा होता है)। (हे पण्डित ! वेदों के अनुसन्धान कर्त्ता) व्यास (ऋषि) ने सोच विचार के यही परम तत्त्व बताया है कि (इन पुस्तकों के पाठ आदि) परमात्मा के नाम के सिमरन की बराबरी नहीं कर सकते (फिर, तू क्यों नाम का सिमरन नहीं करता ?)।२।

रविदास कहता है–सौभाग्य से जिस मनुष्य का ध्यान प्रभु-चरणों में जुड़ता है, उसका मन आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है। उसमें कोई विकार नहीं उठता, वह मनुष्य अपने हृदय में प्रकाश प्राप्त करता है तथा जन्म-मरन (भाव, समस्त आयु) के उसके डर नष्ट हो जाते हैं।३।४।

भाव : सभी पदार्थों को देने वाला प्रभु स्वयं ही है। उसका सिमरन करें, कोई भूख नहीं रह जायेगी।

जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा॥
जउ तुम चंद तउ हम भए है चकोरा॥१॥
माधवे तुम न तोरहु तउ हम नही तोरहि॥
तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि॥१॥ रहाउ॥
जउ तुम दीवरा तउ हम बाती॥
जउ तुम तीरथ तउ हम जाती॥२॥
साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी॥
तुम सिउ जोरि अवर संगि तोरी॥३॥
जह जह जाउ तहा तेरी सेवा॥
तुम सो ठाकुरु अउरु न देवा॥४॥
तुमरे भजन कटहि जम फांसा॥
भगति हेत गावै रविदासा॥५॥५॥

पद अर्थ : जउ–यदि। गिरि–पर्वत। गिरिवर–सुन्दर पर्वत। तउ–तब। भए है–हुए हैं, बनूँगा।१।

न तोरहु–न तोड़। हम नही तोरहि–हम नहीं तोड़ेंगे, मैं नहीं तोड़ूँगा। तोरि–तोड़कर। सिउ–से।१। रहाउ।

दीवरा–सुन्दर-सा दीपक। बाती–बत्ती (पलीता)। जाती–यात्री।२।

अवर संगि–दूसरों के साथ।३।

जह जह–जहाँ-जहाँ। तुम सो–तेरे जैसा। ठाकुरु–स्वामी। देवा–हे देव! ।४।

कटहि–काटे जाते हैं। फांसा–फाही। भगति हेत–भक्ति प्राप्त करने के लिए।५।

अर्थ : हे माधो ! यदि तू (मेरे साथ) प्यार न तोड़ें तो मैं भी नहीं तोड़ूँगा, क्योंकि तेरा साथ तोड़कर मैं अन्य किस के साथ जोड़ सकता हूँ ? (अन्य कोई, हे माधो ! तेरे जैसा है ही नहीं)।१। रहाउ।

हे मेरे माधो ! यदि तू सुन्दर पहाड़ बने, तो मैं (तेरा) मोर बनूँगा (तुझे

देख-देखकर पैलां पाऊँगा)। यदि तू चन्द्रमा बने तो मैं तेरी चकोर बनूंगी (तो मैं तुझे देखकर प्रसन्न हो होकर बोलूँगी)।१।

हे माधो ! यदि तू सुन्दर दीपक बने, मैं (तेरी) बत्ती (पलीता) बन जाऊँ। यदि तू तीर्थ बन जाएं तो मैं (तेरा दर्शन करने के लिए) यात्री बन जाऊँगा।२।

हे प्रभु ! मैंने तेरे साथ पक्का प्रेम कर लिया है। तेरे साथ प्रेम करके मैंने अन्य सबसे तोड़ लिया है।३।

हे माधो ! मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ (मुझे प्रत्येक स्थान पर तू ही दिखाई देता है, मैं प्रत्येक स्थान पर) तेरी ही सेवा करता हूँ। हे देव ! तेरे जैसा कोई अन्य स्वामी मुझे दिखाई नहीं दिया।४।

तेरी बन्दगी करने से यमों के बन्धन कट जाते हैं, (तभी) रविदास तेरी भक्ति का चाव (उत्साह) प्राप्त करने के लिए तेरे गुण गाता है।५।५।

शब्द का भाव : प्रभु की कृपा से ही उसके चरणों में प्रीति टिकी रह सकती है। वही प्रीति उच्च स्तर की है।

जल की भीति, पवन का थंभा, रकत बूंद का गारा॥
हाड मास नाड़ी को पिंजरु, पंखी बसै बिचारा॥१॥
प्रानी, किआ मेरा किआ तेरा॥
जैसे तरवर पंखि बसेरा॥१॥ रहाउ॥
राखहु कंध उसारहु नीवां॥
साढे तीनि हाथ तेरी सीवां॥२॥
बंके बाल पाग सिरि डेरी॥
इहु तनु होइगो भसम की ढेरी॥३॥
ऊचे मंदर सुंदर नारी॥
राम नाम बिनु बाजी हारी॥४॥
मेरी जाति कमीनी, पांति कमीनी, ओछा जनमु हमारा॥

तुम सरनागति राजा राम चंद,
कहि रविदास चमारा॥५॥६॥

पद अर्थ : भीति–दीवार। पवन–हवा। थंभा–खम्भा, स्तम्भ। रकत–माँ का रक्त। बूंद–पिता के वीर्य की बूँद। पंखी–जीव-पक्षी।१।

प्रानी–हे प्राणी ! तरवर–वृक्षों (पर)। पंखि–पक्षी।१। रहाउ।

नीवां–नींव। सीवां–सीमा, अधिक से अधिक स्थान।२।

बंके–सुन्दर, बांके। डेरी–टेढी।३।

बाजी–ज़िंदगी की बाज़ी।४।

पांति–कुल, गोत्र। ओछा–ओछा, निम्न। सरनागति–शरण में आया हूँ। राजा–हे राजन् ! कहि–कहे। चंद–हे चांद ! हे सुन्दर !।५।

अर्थ : जैसे वृक्षों पर पक्षियों का (सिर्फ़ रात के लिए) बसेरा होता है (वैसे जीवों का निवास जगत् में है)। हे भाई ! फिर इस मेरे तेरे का क्या लाभ ?।१। रहाउ।

जीव-पक्षी बेचारा उस शरीर में बस रहा है जिसकी दीवार (मानो) पानी की है, जिस का स्तम्भ हवा (श्वासों) का है, माँ के रक्त तथा बाप के वीर्य का जिसको गारा लगा हुआ है, तथा हाड-मांस नाड़ियों का पिंजर बना हुआ है।१।

हे भाई ! (गहरी) नींव खोद-खोद कर तू उन पर दीवारें बनाता है, पर तुझे स्वयं को (प्रतिदिन तो अधिक से अधिक) साढे तीन हाथ स्थान की ही ज़रूरत होती है। (सोने के समय इतना स्थान ही तू लेता है)।२।

तू सिर पर बांके बाल (संवार-संवार कर) टेढी पगड़ी बाँधता है (पर शायद तुझे कभी यह याद नहीं आया कि) यह शरीर (ही किसी दिन) राख की ढेरी हो जाएगा।३।

हे भाई ! तू ऊँचे महल तथा सुन्दर स्त्री (का मान करता है), प्रभु का नाम भुलाकर तू मानव जीवन की बाज़ी हार रहा है।४।

रविदास चमार कहता है–हे मेरे राजन ! हे मेरे सुन्दर राम ! मेरी तो

जाति, कुल तथा जन्म सब कुछ निम्न ही निम्न (ओछा) था, (यहाँ उच्च कुल वाले डूबते जा रहे हैं, मेरा क्या बनना था ? पर) मैं तेरी शरण में आया हूँ।५।६।

नोट : इस शब्द में असल ज़ोर इस बात पर दिया गया है कि यहाँ संसार में पक्षियों की तरह जीवों का बसेरा है, पर जीव बड़े किले गाढ़कर मान कर रहे हैं तथा परमात्मा को भुलाकर अपना जीवन व्यर्थ गवा रहे हैं। अन्तिम पंक्तियों के शब्द 'राजा' तथा 'चंद' श्री राम चन्द्र जी के लिए नहीं हैं। अपना ओछापन अधिक व्यक्त करने के लिये परमात्मा के लिए शब्द 'राजा,' तथा 'चंद' प्रयुक्त किये गये हैं; भाव, एक तरफ़ प्रकाश रूप सुन्दर प्रभु, दूसरी तरफ़ मैं जीव नीच तथा कमीना। यदि रविदास जी श्री राम चन्द्र जी की मूर्ति के उपासक होते तो अपने शब्दों में शब्द 'माधउ' का प्रयोग न करते, क्योंकि 'माधउ' कृष्ण जी का नाम है तथा एक अवतार का पुजारी दूसरे अवतार का नाम अपने अवतार के लिए प्रयुक्त नहीं कर सकता।

शब्द का भाव : यहाँ रैणि बसेरा है। 'मैं-मेरी' क्यों ?

चमरटा गांठि न जनई॥
लोगु गठावै पनही॥१॥ रहाउ॥
आर नही जिह तोपउ॥
नही रांबी ठाउ रोपउ॥१॥
लोगु गंठि गंठि खरा बिगूचा॥
हउ बिनु गांठे जाइ पहूचा॥२॥
रविदासु जपै राम नामा॥
मोहि जम सिउ नाही कामा॥३॥७॥

पद अर्थ : चमरटा—ग़रीब चमार। गांठि न जनई—गांठना नहीं जानता। गठावै—गठवाते हैं। पनही—जूता।१। रहाउ।

जिह—जिस से। तोपउ—सिलाई करूँ। ठाउ—स्थान, जूते की टूटी हुई जगह। रोपउ—पेबन्द (टाकी) लगाऊँ।१।

गंठि गंठि–गांठ गांठकर। खरा–बहुत। बिगूचा–परेशान हो रहा है। हउ–मैं। बिनु गांठे–गांठने का काम छोड़कर।२।

मोहि–मुझे। सिउ–से। कामा–मतलब।३।

नोट : रविदास जी बनारस के निवासी थे तथा यह शहर विद्वान ब्राह्मणों का केन्द्र चला आ रहा है। ब्राह्मणों के नेतृत्व में यहाँ मूर्ति-पूजा का ज़ोर होना भी स्वाभाविक बात थी। एक तरफ़ उच्च कुल के विद्वान लोग मन्दिरों में जाकर मूर्ति-पूजा करें, दूसरी तरफ़ एक अति निम्न जाति का कंगाल तथा ग़रीब रविदास एक परमात्मा के नाम-सिमरन का प्रचार करे–यह एक अज़ीब-सा कौतुक बनारस में हो रहा था। ब्राह्मणों द्वारा चमार रविदास को उसकी निम्न जाति की याद दिला-दिलाकर उसका उपहास करना भी एक स्वाभाविक-सी बात थी। ऐसी दशा प्रत्येक स्थान पर रोज़ाना के जीवन में देखी जा रही है।

इस शब्द में रविदास जी लोगों के इस उपहास का उत्तर देते हैं तथा कहते हैं कि मैं तो भला जाति का ही चमार हूँ, लोग उच्च कुल के होकर भी चमार बने हुए हैं। यह जिस्म, मानो, एक जूता है। ग़रीब मनुष्य बार-बार अपना जूता गठवाता है ताकि बहुत समय तक काम दे सके। इसी तरह माया के मोह में फंसे हुए लोग (चाहे वे उच्च कुल के भी हैं) इस शरीर को गांठने के लिए दिन-रात इसकी ही पालना में जुटे रहते हैं, तथा परमात्मा को भूलकर खुआर होते हैं। जैसे चमार जूता गांठता है, वैसे ही माया-ग्रसित जीव शरीर को सदा अच्छी ख़ुराक, दवाइयों तथा पोशाकों आदि के रूप में सिलाई तथा पेबन्द लगाता रहता है। सो, समूह जगत् ही चमार बना हुआ है। पर रविदास जी कहते हैं कि मैंने मोह को समाप्त कर शरीर को गांठना छोड़ दिया है। मैं लोगों की तरह दिन-रात शरीर की पालना में नहीं लगा रहता। मैंने प्रभु के नाम का सिमरन अपना मुख्य कर्म बनाया है, इसीलिए मुझे किसी यम आदि का डर नहीं रहा।

अर्थ : मैं ग़रीब चमार (शरीर के जूते को) गांठना नहीं जानता, पर जगत् के जीव अपने-अपने शरीर-रूपी जूते गंठवा रहे हैं (भाव, लोग

दिन-रात सिर्फ़ शरीर की पालना के काम में लगे हुए हैं)।१। रहाउ।

मेरे पास आर (सूआ) नहीं है कि मैं (जूते को) टांके लगाऊँ (भाव, मेरे अन्दर मोह का आकर्षण नहीं कि मेरा ध्यान सदा शरीर में ही टिका रहे)। मेरे पास रम्बी नहीं है कि (जूती को) पेबन्द लगाऊँ (भाव, मेरे अन्दर लोभ नहीं है कि अच्छे-अच्छे खाने लाकर नित्य शरीर को पालता रहूँ)।१।

जगत् गाँठ-गाँठ कर बहुत व्याकुल हो रहा है (भाव, जगत के जीव दिन-रात अपने-अपने शरीर के पालन-पोषण के कार्य में लगे रहकर दुःखी हो रहे हैं); मैं गांठने का कार्य छोड़कर (भाव, नित्य सिर्फ़ अपने शरीर के पालन-पोषण के कार्य में लगा रहना छोड़कर) प्रभु चरणों में पहुँच गया हूँ।२।

रविदास अब परमात्मा के नाम का सिमरन करता है (तथा शरीर का मोह छोड़ बैठा है, इसलिए) मुझे रविदास को यमों से कोई मतलब नहीं रह गया।३।७।

शब्द का भाव : शारीरिक मोह परेशान करता है।

१ओ सतिगुरप्रसादि॥

धनासरी भगत रविदास जी की

हम सरि दीनु, दइआलु न तुम सरि,
अब पतीआरु किआ कीजै॥
बचनी तोर, मोर मनु मानै, जन कउ पूरनु दीजै॥१॥
हउ बलि बलि जाउ रमईआ कारने॥
कारन कवन अबोल॥ रहाउ॥
बहुत जनम बिछुरे थे माधउ, इहु जनमु तुम्हारे लेखे॥
कहि रविदास आस लगि जीवउ,
चिर भइओ दरसनु देखे॥२॥१॥

पद अर्थ : हम सरि–मेरे जैसा। सरि–बराबर का। दीनु–दीन, कंगाल। अब–अब। पतीआरु–परीक्षा, अज़मायश। किआ कीजै–क्या करना हुआ ? करने की आवश्यकता नहीं। बचनी तोर–तेरी बातें कर के। मोर–मेरा। मानै–मान जाए। पूरनु–पूर्ण भरोसा।१।

रमईआ कारने–सुन्दर राम से। कारन कवन–किस कारण ? क्यों ? अबोल–नहीं बोलता। रहाउ।

माधउ–हे माधो ! तुम्हारे लेखे–(भाव) तेरी याद में बीते। कहि–कहे, कहता है।२।

अर्थ : (हे माधो !) मेरे जैसा कोई दीन नहीं तथा तेरे जैसा अन्य कोई दयालु नहीं, (मेरी कंगालता की) अब और परीक्षा (अज़मायश) करने की आवश्यकता नहीं। (हे सुन्दर राम !) मुझे दास को यह पूर्ण भरोसा बख़्श कि मेरा मन तेरी सिफ़ति-सालाह की बातों में ही लगा रहे ।१।

हे सुन्दर राम ! मैं तुझ पर हमेशा कुर्बान हूँ, तू किस कारण से मेरे साथ नहीं बोलता ? । रहाउ।

रविदास कहता है–हे माधो ! कई जन्मों से मैं तुझ से बिछुड़ा हुआ हूँ।(कृपा कर, मेरा) यह जन्म तेरी याद में बीते, तेरा दर्शन किये बहुत समय हो गया है, (दर्शन की) आशा में ही मैं जीता हूँ।२।१।

भाव : प्रभु-दर पर उसके दर्शन की प्रार्थना।

चित सिमरनु करउ नैन अविलोकनो,
स्रवन बानी सुजसु पूरि राखउ॥
मनु सु मधुकरु करउ चरन हिरदे धरउ,
रसन अंम्रित राम नाम भाखउ॥१॥
मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जिनि घटै॥
मै तउ मोलि महगी लई जीअ सटै॥१॥ रहाउ॥
साध संगति बिना भाउ नही ऊपजै,
भाव बिनु भगति नही होइ तेरी॥
कहै रविदासु इक बेनती हरि सिउ,
पैज राखहु राजा राम मेरी॥२॥२॥

पद अर्थ : करउ–करूँ, मैं करूँ। नैन–आँखों से। अविलोकनो–मैं देखूँ। स्रवन–कानों में। सुजसु–सुयश। पूरि राखउ–परिपूर्ण रखूँ। मधुकरु–भंवरा। करउ–मैं बनाऊँ। रसन–जीभ से। भाखउ–मैं उच्चारण करूँ।१।

जिनि–कहीं। जिनि घटै–कहीं कम न हो जाए। जीअ सटै–प्राणों के बदले।१। रहाउ।

भाउ–प्रेम। राजा राम–हे राजन ! हे राम ! पैज–प्रतिष्ठा।२।

अर्थ : (मुझे डर रहता है कि) गोबिन्द से मेरी प्रीति कहीं कम न हो जाए, मैंने तो बहुत महंगे मूल्य (यह प्रीति) प्राप्त की है, प्राण देकर (यह प्रीति) ख़रीदी है।१। रहाउ।

(इसीलिए मेरी प्रार्थना है कि) मैं चित्त से प्रभु का सिमरन करता रहूँ, आँखों से उसको देखता रहूँ, कानों में उसकी बाणी तथा उसका सुयश परिपूर्ण (भरकर) रखूँ, अपने मन को भंवरा बनाए रखूँ, उसके (चरण-कमल) हृदय में टिकाए रखूँ तथा जीभ से उस प्रभु का आत्मिक जीवन देने वाले नाम का उच्चारण करता रहूँ।१।

(पर यह) प्रीति साध-संगति के बिना पैदा नहीं हो सकती, तथा हे प्रभु ! प्रीति के बिना तेरी भक्ति नहीं हो सकती। रविदास प्रभु के आगे एक प्रार्थना करता है–हे मेरे राजन ! हे मेरे राम ! (मैं तेरी शरण में आया हूँ) मेरी लाज रखना।२।२।

नोट : पिछले शब्द तथा इस शब्द में रविदास जी परमात्मा के लिए शब्द 'रमईआ', 'माधउ', 'राम', 'गोबिंद', 'राजा राम' प्रयुक्त करते हैं। शब्द 'माधउ' तथा 'गोबिंद', श्री कृष्ण जी के नाम हैं। यदि रविदास जी श्री राम-अवतार के पुजारी होते तो श्री कृष्ण जी के नाम का प्रयोग न करते। ये सांझे शब्द परमात्मा के लिए ही हो सकते हैं।

शब्द का भाव : प्रभु के साथ प्रीति कैसे कायम रह सकती है ?– सिमरन तथा साध-संगति के द्वारा।

नामु तेरो आरती मजनु मुरारे॥
हरि के नाम बिनु झूठे सगल पासारे॥१॥ रहाउ॥
नामु तेरो आसनो नामु तेरो उरसा,
नामु तेरा केसरो ले छिटकारे॥
नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो,
घसि जपे नामु ले तुझहि कउ चारे॥१॥
नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती,
नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे॥
नाम तेरे की जोति लगाई,
भइओ उजिआरो भवन सगलारे॥२॥

नामु तेरो तागा नामु फूल माला,
भार अठारह सगल जूठारे॥
तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ,
नामु तेरा तुही चवर ढोलारे॥३॥
दस अठा अठ सठे चारे खाणी,
इहै वरतणि है सगल संसारे॥
कहै रविदासु नामु तेरो आरती,
सति नामु है हरि भोग तुहारे॥४॥३॥

पद अर्थ : आरती–(Skt. आरति–waving lights before an image) थाल में फूल रखकर तथा जलता दीया रखकर चन्दन आदि सुगन्धियाँ लेकर किसी मूर्ति के आगे उस थाल को हिलाये जाना तथा उसकी स्तुति में भजन गाने–यह उस मूर्ति की अचारती कही जाती है। मुरारे–हे मुरारि! (मुर+अरि। अरि–शत्रु, मुर दैत्य का शत्रु। कृष्ण जी का नाम है) हे परमात्मा ! पासारे–आडम्बर। (*नोट :* उन आडम्बरों का ज़िक्र शेष शब्द में है–चन्दन चढ़ाना, दीपक, माला, नैवेद्य का भोग) ।१। रहाउ।

आसनो–ऊन आदि का कपड़ा (आसन) जिस पर बैठकर मूर्ति की पूजा की जाती है। उरसा–चन्दन रगड़ने वाली सिल। ले–लेकर। छिटकारे–छिड़का जाता है। अंभुला–(Skt. अंभस्–water) पानी। जपै–जपकर। तुझहि कउ–तुझे ही। चारे–चढ़ाया जाता है।१।

बाती–बाती (पलीता, दीये का)। माहि–दीये में। पसारे–डाला जाता है। उजिआरो–प्रकाश। सगलारे–सभी। भवन–भवनों में, मंडलों में।२।

तागा–(माला पिरोने के लिए) धागा, तागा। भार अठारह–समूह वनस्पति, संसार की समूह वनस्पति के प्रत्येक किस्म के वृक्ष का एक-एक पत्ता लेकर इक्ठा करने से १८ भार बनते हैं; एक भार पाँच मन कच्चे का है–यह प्राचीन विचार चला आ रहा है। जूठारे–जूठे, क्योंकि भंवरे आदि

द्वारा सूँघे हुए हैं। अरपउ–मैं अर्पण करूँ। तूही–तुझे ही। ढोलारे–झुलाया जाता है।३।

दस अठा–१८ पुराण। अठ सठे–६८ तीर्थ। वरतणि–नित्य का व्यवहार। भोग–नैवेद्य, दूध खीर आदि की भेंट।४।

अर्थ : हे प्रभु ! (मूर्ख लोग मूर्तियों की आरती करते हैं पर मेरे लिए) तेरा नाम (तेरी) आरती है तथा तीर्थों का स्नान है। (हे भाई !) परमात्मा के नाम से रहित होकर सभी आडम्बर झूठे हैं।१। रहाउ।

तेरा नाम (मेरे लिए पण्डित वाला) आसन है (जिस पर बैठकर वह मूर्ति की पूजा करता है), तेरा नाम ही (चन्दन घिसाने के लिए) शिला है, (मूर्ति की पूजा करने वाला मनुष्य शिला पर केसर घोलकर मूर्ति पर) केसर छिड़कता है, पर मेरे लिए तेरा नाम ही केसर है। हे मुरारि ! तेरा नाम ही पानी है, नाम ही चन्दन है (इस नाम-चन्दन को नाम-पानी से) घिसाकर तेरे नाम का सिमरन-रूप चन्दन ही मैं तेरे ऊपर लगाता हूँ।१।

हे प्रभु ! तेरा नाम दीपक है, नाम ही (दीपक की) बाती है, नाम ही तेल है, जो लेकर मैंने (नाम-दीपक में) डाला है। मैंने तेरे नाम की ही ज्योति जगाई है (जिस की बरकत से) सभी भवनों में प्रकाश हो गया है।२।

तेरे नाम को ही मैंने धागा बनाया है, नाम को ही मैंने फूल तथा फूलों की माला बनाया है। अन्य समूह वनस्पति (जिससे लोग फूल लेकर मूर्तियों के आगे भेंट करते हैं, तेरे नाम के मुकाबले में) जूठी है। (यह समूह कुदरत तो तेरी बनाई हुई है) तेरी पैदा की हुई में से मैं तेरे आगे क्या रखूँ ? (इसलिए) मैं तेरा नाम-रूप चंवर ही तुझ पर झूलाता हूँ।३।

भाव : आरती आदि के आडम्बर व्यर्थ हैं। सिमरन ही ज़िन्दगी का सही रास्ता है।

समूह संसार की नित्य की क्रिया तो यह है कि (तेरा नाम भुलाकर) अठारह पुराणों की कहानियों में मग्न हैं तथा अठारह तीर्थों के स्नान को ही पुण्य कर्म समझ बैठे हैं तथा इस तरह चार श्रेणीयों की योनियों में भटक रहे हैं। रविदास कहता है–हे प्रभु ! तेरा नाम ही (मेरे लिए) तेरी आरती

है। तेरे हमेशा कायम रहने वाले नाम का ही भोग मैं तुझे लगाता हूँ।४।३।

नोट : जगत् के पैदा होने के चार कारण माने गये हैं, चार योनियां मानी गई हैं–अण्डज, जेरज (वीर्य), स्वेद, उदक। अण्डज–अण्डे से पैदा हुए जीव। जेरज–ज़ेर (वीर्य) से पैदा हुए जीव। स्वेद–पसीने से पैदा हुए जीव। उदक (उद्भुज)–पानी से धरती में से पैदा हुए जीव।

नोट : इस आरती से स्पष्ट प्रगट होता है कि रविदास जी एक परमात्मा के उपासक थे। शब्द 'मुरारि' (जो कृष्ण जी का नाम है) प्रयोग करने से यह भी स्पष्ट है कि वे श्री राम चन्द्र जी के उपासक नहीं थे, जैसे कि कई सज्जन उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द 'राजा राम चंद' से समझ बैठे हैं। हरि, मुरारि, राम आदि शब्दों का प्रयोग उन्होंने उस परमात्मा के लिए किया है, जिसके बारे में वह कहते हैं–'तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ'।

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

जैतसरी बाणी भगता की

नाथ कछूअ न जानउ॥
मनु माइआ कै हाथि बिकानउ॥१॥ रहाउ॥
तुम कहीअत हौ जगत गुर सुआमी॥
हम कहीअत कलिजुग के कामी॥१॥
इन पंचन मेरो मनु जु बिगारिओ ॥
पलु पलु हरि जी ते अंतरु पारिओ॥२॥
जत देखउ तत दुख की रासी॥
अजौं न पत्याइ निगम भए साखी॥३॥
गोतम नारि उमापति स्वामी॥
सीसु धरनि सहस भग गांमी॥४॥
इन दूतन खलु बधु करि मारिओ॥
बडो निलाजु अजहू नही हारिओ॥५॥
कहि रविदास कहा कैसे कीजै॥
बिनु रघुनाथ सरनि का की लीजै॥६॥१॥

पद अर्थ : नाथ–हे नाथ ! हे प्रभु ! कछूअ–कुछ भी। न जानउ–मैं नहीं जानता। कछूअ न जानउ–मैं कुछ भी नहीं जानता, मुझे कुछ समझ नहीं आता। बिकानउ–मैंने बेच दिया है।१। रहाउ।

कहीअत हौ–तू कहलवाता हैं। कामी–कामी, विषयी।१।

पंचन–कामादि पाँच विकारों ने। जु–इतना-सा। ते–तों। अंतरु–अन्तर।२।

जत–जिधर। देखउ–मैं देखता हूँ। रासी–सामान। न पत्याइ–मानता नहीं। निगम–वेद आदि धर्म पुस्तकें। साखी–गवाह।३।

गोतम नारि–गौतम की पत्नी अहिल्या। उमापति–पार्वती का पति, शिव। सीसु धरनि–(ब्रह्मा का) सिर धारण करने वाला शिव। (*नोट :* जब ब्रह्मा अपनी ही पुत्री पर मुग्ध हो गया, तथा जिधर वह जाए, उधर ब्रह्मा अपना नया मुँह बनाता जाए, वह आकाश की तरफ़ उड़ गई, ब्रह्मा ने पाँचवां मुँह ऊपर की तरफ़ बना लिया। शिवजी ने यह अतिक्रमण देखकर ब्रह्मा का यह सिर काट दिया पर ब्रह्म-हत्या का पाप हो जाने से यह सिर शिवजी के हाथों से ही चिपक गया)। सहस–हज़ार। भग–स्त्री का गुप्त अंग। सहस भग गांमी–हज़ारों भगों के निशान वाला। (*नोट :* जब इन्द्र ने गौतम की पत्नी के साथ व्यभिचार किया तो गौतम के श्राप से उसके बदन पर हज़ार भग बन गई)।४।

दूतन–दूतों ने। खलु–मूर्ख, खल। बधु–पिटाई। बधु करि मारिओ–मार मारकर (पिटाई कर के) मारा है, बुरी तरह मारा है।५।

कहि–कहे, कहता है। कहा–कहाँ (जाऊँ) ? रघुनाथ–परमात्मा।६।

अर्थ : हे प्रभु ! मैंने अपना मन माया के हाथ बेच दिया है, मैं अब कुछ नहीं जानता (मेरे वश में अब कुछ नहीं है)।१। रहाउ।

हे नाथ ! तू जगत् का स्वामी कहलाता है, हम कलियुग के विषयी जीव हैं (मेरी सहायता करें)।१।

(कामादि) इन पाँचों ने मेरा मन इतना बिगाड़ दिया है कि हर पल परमात्मा से अन्तर पड़ रहा है।२।

(इन्होंने जगत् को बहुत परेशान किया हुआ है) मैं जिधर देखता हूँ उधर दुःखों का ही सामान है। यह देखकर भी (कि विकारों का परिणाम दुःख है) मेरा मन मानता नहीं, वेद आदि धर्म पुस्तकें भी (प्रमाणों द्वारा) यही गवाही दे रही हैं।३।

गौतम की पत्नी अहिल्या, पार्वती का पति शिव, ब्रह्मा, हज़ार भगों के चिह्न वाला इन्द्र–(इन सभी को इन पाँचों ने ही परेशान किया)।४।

इन दूतों ने (मेरे) मूर्ख (मन) को बुरी तरह मारा है पर यह मन बड़ा बेशर्म है, अभी भी विकारों की तरफ़ से पलटा (मुड़ा) नहीं (विकारों से मुक्त नहीं हुआ)।५।

रविदास कहता है–और कहाँ जाऊँ ? और क्या करूँ ? (इन विकारों से बचने के लिए) परमात्मा के बिना अन्य किसी का सहारा नहीं लिया जा सकता।६।१।

नोट : इस शब्द में जिस को शब्द 'रघुनाथ' से याद किया है, उसके लिए शब्द 'जगत-गुर सुआमी' भी प्रयुक्त हुआ है। शब्द 'रघुनाथ' का सत्गिुरु जी ने आप भी कई बार प्रयोग किया है, परमात्मा के अर्थ में।

शब्द का भाव : विकारों की मार से बचने के लिए परमात्मा का आश्रय लेना ही एक मात्र तरीका है।

१ओ सतिगुरप्रसादि ॥

रागु सूही बाणी स्री रविदास जीउ की

सह की सार सुहागनि जानै॥
तजि अभिमानु सुख रलीआ मानै॥
तनु मनु देइ न अंतरु राखै॥
अवरा देखि न सुनै अभाखै॥१॥
सो कत जानै पीर पराई॥
जा कै अंतरि दरदु न पाई॥१॥ रहाउ॥
दुखी दुहागनि दुइ पख हीनी॥
जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी॥
पुरसलात का पंथु दुहेला॥
संगि न साथी गवनु इकेला॥२॥
दुखीआ दरदवंदु दरि आइआ॥
बहुतु पिआस जबाबु न पाइआ॥
कहि रविदास सरनि प्रभ तेरी॥
जिउ जानहु तिउ करु गति मेरी॥३॥१॥

पद अर्थ : सह–पति। सार–महत्त्व। सुहागनि–सुहाग वाली, पति से प्रेम करने वाली। तजि–छोड़कर। अंतरु–अंतर। देइ–सौंप देती है। अभाखै–ग़लत प्रेरणा।१।

पराई पीर–अन्य (गुरमुख सुहागनों) की वियोग की पीड़ा। जा कै अंतरि–जिस के हृदय में। दरदु–प्रभु-पति से वियोग की पीड़ा।१। रहाउ।

दुइ पख–ससुराल, मायका, लोक परलोक। हीनी–हीन हुई। जिनि–जिस ने। नाह भगति–खसम-प्रभु की बन्दगी। निरंतरि–एक-रस, निरन्तर। पुरसलात–(पुल+सिरात) मुसलमानों के विचार के अनुसार यह पुल दोज़क की आग पर बना हुआ है, बाल जितना बारीक है, प्रत्येक को इसके ऊपर से जाना पड़ता है। दुहेला–कठिन।२।

दरि–प्रभु के दर पर। पिआस–दर्शन की प्यास। जबाबु–उत्तर। गति–उच्च आत्मिक अवस्था।३।

अर्थ : जिस जीव-स्त्री के हृदय में प्रभु के वियोग की पीड़ा पैदा नहीं हुई, वह उन (गुरमुख सुहागनों) के दिल की (यह) पीड़ा कैसे समझ सकती है ?।१। रहाउ।

पति-प्रभु (के मिलाप) का महत्त्व पति से प्रेम करने वाली ही जानती है, वह अहंकार त्याग कर (प्रभु-चरणों में जुड़कर उस मिलाप का) सुख-आनन्द अनुभव करती है। अपना तन मन पति-प्रभु को सौंप देती है, प्रभु-पति से (कोई) अन्तर नहीं रखती, न किसी अन्य का आश्रय (सहारा) देखती है तथा न किसी की न सुनने योग्य बातें सुनती है।१।

पर जिस जीव-स्त्री ने पति-प्रभु की बन्दगी एक-रस (निरन्तर) नहीं की, वह प्रभु द्वारा त्यागी गई दुःखी रहती है, ससुराल, मायके (लोक परलोक) दोनों जगह से च्युत हो जाती है। जीवन का यह मार्ग (जो) पुरसलात (के समान है, उसके लिए) बड़ा कठिन हो जाता है, (यहाँ दुःखों में) कोई संगी कोई साथी नहीं बनता, (जीवन-सफ़र का) समस्त रास्ता अकेले ही तय करना पड़ता है।२।

हे प्रभु ! मैं दुःखी, मैं दर्दयुक्त तेरे दर पर आया हूँ, मुझे तेरे दर्शन की बड़ी प्यास है, (पर तेरे दर से) कोई उत्तर नहीं मिलता। रविदास कहता है–हे प्रभु ! मैं तेरी शरण में आया हूँ, जैसे भी हो सके, तैसे मेरी हालत संवार दे।३।१।

शब्द का भाव : परमात्मा की भक्ति की दाति के लिए प्रभु-दर पर याचना कर।

सूही॥
जो दिन आवहि सो दिन जाही॥
करना कूचु रहनु थिरु नाही॥
संगु चलत है हम भी चलना॥
दूरि गवनु सिर ऊपरि मरना॥१॥
किआ तू सोइआ जागु इआना॥
तै जीवनु जगि सचु करि जाना॥१॥ रहाउ॥
जिनि जीउ दीआ सु रिजकु अंबरावै॥
सभ घट भीतरि हाटु चलावै॥
करि बंदिगी छाडि मै मेरा॥
हिरदै नामु सम्हारि सवेरा॥२॥
जनमु सिरानो पंथु न सवारा॥
सांझ परी दहदिस अंधिआरा॥
कहि रविदास निदानि दिवाने॥
चेतसि नाही दुनीआ फनखाने॥३॥२॥

पद अर्थ : जो दिन—जो दिन। जाही—बीत जाते हैं। रहनु—टिकाना, रहना। थिरु—स्थिर, हमेशा रहने वाला। संगु—साथ। गवनु—रास्ता, सफ़र, मुसाफ़िरी। दूरि गवनु—दूर का सफ़र। मरना—मौत।१।

किआ—क्यों ? इआना—हे अन्जान मूर्ख ! तै—तू। जगि—जगत् में। सचु—हमेशा कायम रहने वाला।१। रहाउ।

जिनि—जिस (प्रभु) ने। जीउ—प्राण। अंबरावै—पहुँचाता है। भीतरि—अन्दर। हाटु—दुकान। हाटु चलावै—रोज़ी (रिज़क) का प्रबन्ध करता है। सवेरा—समय पर।२।

सिरानो—बीत रहा है। पंथु—ज़िन्दगी का रास्ता। सवारा—सुन्दर बनाया। सांझ—सांय। दहदिस—दसों दिशाओं में। कहि—कहता है। निदानि—अंत में। दिवाने—हे दिवाने ! हे बाँवरे ! फनखाने—नश्वर।३।

अर्थ : (मनुष्य के जीवन में) जो-जो दिन आते हैं, वे दिन (वास्तव में साथ-साथ) बीतते जाते हैं (भाव, आयु में से घटते जाते हैं), (यहाँ से प्रत्येक जीव ने) कूच कर जाना है, (किसी का भी यहाँ) सदैव के लिए निवास नहीं है। हमारा साथ चला जा रहा है, हमने भी (यहाँ से) चले जाना है, यह दूर का सफ़र है (दूर की यात्रा है) तथा मौत सिर पर खड़ी है (पता नहीं किस समय आ जाए)।१।

हे अन्जान मूर्ख ! होश में आ। तू क्यों सो रहा है ? तू जगत् में इस जीवन को हमेशा कायम रहने वाला समझ बैठा है।१।रहाउ।

(तू हर समय जीविका की चिन्ता में रहता है, देख) जिस प्रभु ने जीवन दिया है वह जीविका भी पहुँचाता है। समस्त शरीरों में बैठा हुआ वह स्वयं जीविका का प्रबन्ध कर रहा है। मैं (इतना बड़ा हूँ) मेरी (इतनी जायदाद है)–छोड़ ये बातें, प्रभु की बन्दगी कर, अब समय पर उसका नाम अपने हृदय में सम्भाल।२।

आयु समाप्त होने पर आ रही है, पर तूने अपनी डगर नहीं संवारी (सफ़र अच्छा नहीं बनाया), सांझ पड़ रही है, हर तरफ़ अन्धेरा ही अन्धेरा छा रहा है। रविदास कहता है–हे बांवरे मनुष्य ! तू प्रभु को याद नहीं करता, दुनिया (जिस के साथ तू मन लगाए बैठा है) अन्त में नष्ट हो जाने वाली है।३।२।

नोट : साधारणतया शब्द 'निदानि' को फ़ारसी का शब्द 'नादान' समझकर इसका अर्थ 'मूर्ख' किया जा रहा है; इसके साथ प्रयुक्त शब्द 'दिवाने' भी कुछ इसी अर्थ की ओर मन का झुकाउ पैदा करता है। पर यह ग़लत है क्योंकि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में जहाँ कहीं यह शब्द आता है इस का अर्थ 'अन्त में', 'आख़िर में' किया जाता है। यह संस्कृत का शब्द 'निदान' है जिसका अर्थ है 'अन्त' (end, termination) देखें–

बिनु नावै पाजु लहगु निदानि॥ *(बिलावलु मः ३)*

नानक एव न जापई कोई खाइ निदानि॥

(सलोक मः १, बिलावलु की वार)

कहि कबीर ते अंति बिगूते आइआ कालु निदाना॥ *(बिलावलु)*

शेष रहा यह एतराज़ कि यह अर्थ करते समय 'निदानि' शब्द को अन्तिम शब्द 'फनखाने' के साथ रखना पड़ता है, लगता है यह 'अन्वय' खींच कर किया है। इस का उत्तर यह है कि प्रत्येक कवि की कविता का अपना-अपना ढंग होता है। भक्त रविदास जी ने एक अन्य स्थान पर भी इसी तरीके को अपनाया है :

निंदकु सोधि साधि बीचारिआ॥
कहु रविदास पापी नरकि सिधारिआ॥ *(गोंड, पन्ना ८७५)*

इंस प्रमाण में प्रयुक्त शब्द 'निंदकु' पंक्ति का अर्थ करते समय अन्त में शब्द 'पापी' के साथ प्रयुक्त करना पड़ता है।

शब्द का भाव : संसार में सदैव नहीं बैठे रहना। इसके मोह में मस्त होकर प्रभु-भक्ति मत छोड़ें।

सूही॥

ऊचे मंदर साल रसोई॥
एक घरी फुनि रहनु न होई॥१॥
इहु तनु ऐसा जैसे घास की टाटी॥
जलि गइओ घासु रलि गइओ माटी॥१॥ रहाउ॥
भाई बंध कुटंब सहेरा॥
ओइ भी लागे काढु सवेरा॥२॥
घर की नारि उरहि तन लागी॥
उह तउ भूतु भूतु करि भागी॥३॥
कहि रविदास सभै जगु लूटिआ॥
हम तउ एक रामु कहि छूटिआ॥४॥३॥

पद अर्थ : साल रसोई–रसोई-घर। फुनि–फिर (भाव, मौत आने पर)।१। रहाउ।

टाटी—छप्पर।१। रहाउ।

भाई बंध—रिश्तेदार। सहेरा—साथी, मित्र। लागे—कहने लग जाते हैं। सवेरा—सवेरे, जल्दी।२।

घर की नारि—अपनी पत्नी। उरहि—जल्दी से। भूतु—मर गया है। भागी—दूर हट जाती है, भाग जाती है।३।

कहि—कहता है। लूटिआ—लूटा जा रहा है। तउ—तब।४।

अर्थ : (यदि) ऊँचे-ऊँचे पक्के घर तथा रसोई-घर हों (तब भी क्या हुआ) मौत आने पर (इनमें) एक घड़ी भी (अधिक) खड़े नहीं हुआ जा सकता।१।

(पक्के घर आदि तो दूर रहे) यह शरीर (भी) घास के छप्पर की तरह ही है, घास जल जाता है तथा मिट्टी में मिल जाता है (यही हाल शरीर का होता है)।१। रहाउ।

(जब मनुष्य मर जाता है तो) रिश्तेदार, परिवार, सज्जन मित्र साथी ये सभी ही कहने लगते हैं कि इसको अब जल्दी बाहर निकालो।२।

अपनी पत्नी (भी) जो हमेशा (मनुष्य के) साथ लगी रहती थी, यह कहकर दूर हट जाती है कि यह तो अब मर गया है, मर गया है।३।

रविदास कहता है—समूह जगत् ही (शरीर को, जायदाद को, सम्बन्धियों को अपना समझकर) ठगा जा रहा है, पर मैं एक परमात्मा के नाम का सिमरन करके (इस ठगी से) बचा हूँ।४।३।

शब्द का भाव : यहाँ थोड़े दिनों का टिकाना है। वास्तविक (असल) साथी परमात्मा ही है।

१ओं सतिगुरप्रसादि॥

बिलावलु बाणी रविदास भगत की

दारिदु देखि सभु को हसै, ऐसी दसा हमारी॥
असट दसा सिधि कर तलै, सभ क्रिपा तुमारी॥१॥
तू जानत मै किछु नही, भवखंडन राम॥
सगल जीअ सरनागती, प्रभ पूरन काम॥१॥ रहाउ॥
जो तेरी सरनागता, तिन नाही भारु॥
ऊच नीच तुम ते तरे आलजु संसारु॥२॥
कहि रविदास अकथ कथा, बहु काइ करीजै॥
जैसा तू तैसा तुही, किआ उपमा दीजै॥३॥१॥

पद अर्थ : दारिदु–ग़रीबी, दरिद्रता। सभु को–प्रत्येक जन। हसै–उपहास करता है। दसा–हालत, दशा। असट दसा–अठारह (आठ तथा दस)। कर तलै–हाथ की हथेली पर, अपने आधीन।१।

मै किछु नही–मैं कुछ नहीं। भवखंडन–हे जन्म-मरन का नाश करने वाले। जीअ–जीव। पूरन काम–हे सभी की कामना पूर्ण करने वाले !।१। रहाउ।

सरनागता–शरण में आए हैं। भारु–बोझ (विकारों का)। तुम ते–तेरी कृपा से। ते–से। आलजु–(*नोट :* इस शब्द के दो भाग 'आल' तथा 'जु' करने ठीक नहीं, अलग-अलग करके पाठ करना ही असम्भव हो जाता है। 'आलजु' का अर्थ 'अलजु' करना भी ठीक नहीं, 'आ' तथा 'अ' में बड़ा फ़र्क है। बाणी में 'अलजु' शब्द नहीं, 'निरलज' शब्द ही आया है। साधारण बोली में हम कहते भी निर्लज्ज ही हैं) आल+जु। आल–आलय, घर, गृहस्थ का जंजाल। आलजु–गृहस्थ के जंजालों से पैदा हुआ, जंजालों से भरा हुआ।२।

अकथ–अ+कथ, बयान से दूर। बहु–बहुत बात। काइ–किस लिए ? उपमा–उपमा, तुलना, बराबरी।३।

अर्थ : हे जीवों के जन्म-मरन के चक्र का नाश करने वाले राम ! हे सभी की कामना पूर्ण करने वाले प्रभु! सभी ज़ीव जन्तु तेरी ही शरण में आते हैं (मैं ग़रीब भी तेरी ही शरण में हूँ), तू जानता है कि मैं स्वयं कुछ भी नहीं हूँ।१। रहाउ।

प्रत्येक मनुष्य (किसी की) दरिद्रता देखकर उपहास करता है, (तथा) ऐसी ही दशा मेरी भी थी (कि लोग मेरी ग़रीबी का मज़ाक बनाते थे) पर अब अठारह सिद्धियाँ मेरे हाथ की हथेलियों पर हैं; हे प्रभु ! यह समस्त तेरी ही कृपा है।१।

ऊँची जाति वाले हों, चाहे निम्न जाति के, जो-जो भी तेरी शरण में आते हैं, उन (की आत्मा) पर (विकारों का) भार नहीं रह जाता, इसलिए वे तेरी कृपा से इस जंजाल भरे संसार (समुद्र) में से (आसानी से) निकल जाते हैं।२।

रविदास कहता है–हे प्रभु ! तेरे गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता (तू कंगाल को भी शहनशाह बनाने वाला है); चाहे कितना यत्न करें, तेरे गुण कहे नहीं जा सकते; अपने जैसा तू आप ही है। (संसार) में कोई ऐसा नहीं है जिसको तेरे जैसा कहा जा सके।३।१।

भाव : परमात्मा का सिमरन निम्न कहलाए जाने वालों को भी ऊँचा बना देता है।

बिलावलु॥

जिह कुल साधु बैसनौ होइ॥
बरन अबरन रंकु नही ईसुरु,
बिमल बासु जानीऐ जगि सोइ॥१॥ रहाउ॥
ब्रहमन बैस सूद अरु खत्री, डोम चंडार मलेछ मन सोइ॥
होइ पुनीत भगवंत भजन ते,
आपु तारि तारे कुल दोइ॥१॥

धंनि सु गाउ धंनि सो ठाउ, धंनि पुनीत कुटंब सभ लोइ॥
जिनि पीआ सार रसु, तजे आन रस,
होइ रस मगन, डारे बिखु खोइ॥२॥
पंडित सूर छत्रपति राजा, भगत बराबरि अउरु न कोइ॥
जैसे पुरैन पात रहै जल समीप,
भनि रविदास जनमे जगि ओइ॥३॥२॥

पद अर्थ : जिह कुल–जिस किसी भी कुल में। बैसनौ–परमात्मा का भक्त। होइ–जन्म ले। बरन–उच्च जाति। अबरन–निम्न जाति। रंकु–गरीब। ईसुरु–धनाढ्य, अमीर। बिमल बासु–निर्मल शोभा वाला। बासु–सुगन्ध, अच्छी शोभा। जगि–जगत् में। सोइ–वह मनुष्य।१। रहाउ।

डोम–डूम, मिरासी। मलेछ मन–मलिन मन वाला। आपु–अपने आप को। तारि–तारकर। दोइ–दोनों।१।

धंनि–धन्य, भाग्यशाली। गाउ–गाँव। ठाउ–स्थान। लोइ–जगत् में। जिनि–जिस ने। सार–श्रेष्ठ। तजे–त्यागे, छोड़े। आन–अन्य। मगन–मग्न, मस्त। बिखु–विष। खोइ डारे–नष्ट कर दिया।२।

सूर–सूरमा, शूरवीर। छत्रपति–छत्रधारी। पुरैन पात–चुपत्ती। समीप–पास। रहै–रह सकती है, जी सकती है। भनि–कहता है। जनमे–जन्म लिया है। जनमे ओइ–वे पैदा हुए हैं, उनका ही जन्म लेना सफल है। ओइ–(शब्द 'ओह' से बहु-वचन) वे मनुष्य।३।

अर्थ : जिस किसी भी कुल में परमात्मा का भक्त पैदा हो जाए, चाहे वह उच्च जाति का है चाहे निम्न जाति का है, चाहे कंगाल है, चाहे धनाढ्य, (उस की जाति तथा धन आदि का ज़िक्र ही नहीं होता) वह जगत् में निर्मल शोभा वाला प्रसिद्ध होता है।१। रहाउ।

कोई ब्राह्मण हो, वैश्य हो, शूद्र हो, क्षत्रिय हो, डूम चंडाल हो या मलिन मन वाला हो, परमात्मा के भजन करने से मनुष्य पवित्र हो जाता है, वह अपने आप को (संसार-समुद्र से) पार लगाकर दोनों कुलों को भी

पार लगवा देता है।१।

संसार में वह गाँव मुबारिक है, वह स्थान धन्य है, वह पवित्र कुल भाग्यशाली है, (जिसमें पैदा होकर) किसी ने परमात्मा के नाम का श्रेष्ठ रस पीया है, दूसरे (गन्दे) रस छोड़ दिये हैं, तथा, प्रभु के नाम-रस में मस्त होकर (विकार-वासना का) ज़हर (अपने भीतर से) नाश कर दिया है।२।

भारी विद्वान हो चाहे शूरवीर, चाहे छत्रधारी राजा हो, कोई भी मनुष्य परमात्मा के भक्त के बराबर का नहीं हो सकता। रविदास कहता है–भक्तों का ही जन्म लेना जगत् में मुबारक है (वे प्रभु के चरणों में रहकर ही जी सकते हैं) जैसे चुपत्ती पानी के पास रहकर ही (हरी) रह सकती है।३।२।

भाव : सिमरन निम्न को उच्च बना देता है।

१ओ सतिगुरप्रसादि॥

रागु गोंड बाणी रविदास जीउ की घरु २

मुकंद मुकंद जपहु संसारु॥
बिनु मुकंद तनु होइ अउहार॥
सोई मुकंदु मुकति का दाता॥
सोई मुकंदु हमरा पित माता॥१॥
जीवत मुकंदे मरत मुकंदे॥
ता के सेवक कउ सदा अनंदे॥१॥ रहाउ॥
मुकंद मुकंद हमारे प्रानं॥
जपि मुकंद मसतकि नीसानं॥
सेव मुकंद करै बैरागी॥
सोई मुकंदु दुरबल धनु लाधी॥२॥
एकु मुकंदु करै उपकारु॥
हमरा कहा करै संसारु॥
मेटी जाति हूए दरबारि॥
तुही मुकंद जोग जुग तारि॥३॥
उपजिओ गिआनु हूआ परगास॥
करि किरपा लीने कीट दास॥
कहु रविदास अब त्रिसना चूकी॥
जपि मुकंद सेवा ताहू की॥४॥१॥

पद अर्थ : मुकंद (Skt. मुकन्द–मुकु ददाति इति–One who gives

salvation) मुक्ति दाता प्रभु। संसारु–हे संसार ! हे लोगो ! अउहार–(Skt. अवहार्य–to be taken away) नाशवान् (भाव, व्यर्थ जाने वाला)।१।

जीवत–जीवित रहते, समस्त आयु। मरत–मरते समय भी। ता के–उस मुकन्द के।१। रहाउ।

प्रानं–प्राण। मसतकि–माथे पर। नीसानं–निशान। सेव मुकंद–मुकन्द की सेवा। बैरागी–वैराग्य से युक्त। दुरबल–दुर्बल को, निर्धन को। लाधी–प्राप्त हुआ।२।

उपकारु–उपकार, भला। कहा करै–कुछ कर नहीं सकता, कुछ बिगाड़ नहीं सकता। दरबारि–दरबारी, प्रभु के दरबार में रहने वाले। जोग जुग–युगों-युगों में। तारि–तारने वाले।३।

परगास–प्रकाश। कीट–कीड़े, दीन। चूकी–समाप्त हो गई। ताहू की–उस मुकन्द की ही। जपि–जपकर, मैं जपता हूँ।४।

अर्थ : माया के बन्धनों से मुक्ति देने वाले प्रभु की बन्दगी करने वाले को हमेशा ही आनन्द बना रहता है, क्योंकि वह जीवित रहते हुए भी प्रभु का सिमरन करता है तथा मरते हुए भी उसी को याद करता है (समस्त आयु ही प्रभु को याद रखता है)।१। रहाउ।

हे लोगो ! मुक्ति दाता प्रभु को हमेशा याद रखें, उसके सिमरन के बिना यह शरीर व्यर्थ ही चला जाता है। मेरा तो माँ-बाप ही वह प्रभु है, वह ही दुनिया के बन्धनों से मेरी रक्षा कर सकता है।१।

प्रभु का सिमरन मेरे प्राण (का सहारा बन गया) है, प्रभु का सिमरन करने से मेरे मस्तक पर भाग्य जाग पड़े हैं (भाग्योदय हो गया है); प्रभु की भक्ति (मनुष्य को) वैराग्यवान कर देती है, मुझ ग़रीब को प्रभु के नाम का ही धन प्राप्त हो गया है।२।

यदि परमात्मा मुझ पर कृपा करे, तो (मुझे चमार-चमार कहने वाले) लोग मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। हे प्रभु ! (तेरी भक्ति ने) मेरी (निम्न) जाति (वाली हीन भावना मेरे अन्दर से) मिटा दी है, क्योंकि मैं हमेशा तेरे दर पर रहता हूँ, तू ही हमेशा मुझे (दुनिया के बन्धनों से) पार करने वाला है।३।

(प्रभु की बन्दगी से मेरे अन्दर) आत्मिक जीवन की सूझ पैदा हो गई है, प्रकाश हो गया है। कृपया मुझ दीन दास को प्रभु ने अपना बना लिया है। हे रविदास ! कह–अब मेरी तृष्णा समाप्त हो गई है। अब मैं प्रभु का सिमरन करता हूँ, नित्य प्रभु की ही भक्ति करता हूँ।४।१।

शब्द का भाव : परमात्मा का सिमरन किया करें। सिमरन निम्न को उच्च बना देता है, तृष्णा समाप्त कर देता है।

गोंड॥

जे ओहु अठसठि तीरथ न्हावै॥
जे ओहु दुआदस सिला पूजावै॥
जे ओहु कूप तटा देवावै॥
करै निंद सभ बिरथा जावै॥१॥
साध का निंदकु कैसे तरै॥
सरपर जानहु नरक ही परै॥१॥ रहाउ॥
जे ओहु ग्रहन करै कुलखेति॥
अरपै नारि सीगार समेति॥
सगली सिंम्रिति स्रवनी सुनै॥
करै निंद कवनै नही गुनै॥२॥
जे ओहु अनिक प्रसाद करावै॥
भूमि दान सोभा मंडपि पावै॥
अपना बिगारि बिरांना सांढै॥
करै निंद बहु जोनी हांढै॥३॥
निंदा कहा करहु संसारा॥
निंदक का परगटि पाहारा॥
निंदकु सोधि साधि बीचारिआ॥
कहु रविदास पापी नरकि सिधारिआ॥४॥२॥११॥७॥२॥४९॥जोड़ु॥

पद अर्थ : अठसठि–अठसठ। दुआदस सिला–बारह शिवलिंग (सोमनाथ, बदरी नाराइन, केदार, विश्वेश्वर, रामेश्वर, नागेश्वर, बैजनाथ, भीमशंकर आदि)। (*नोट :* शालिग्राम की पूजा विष्णु की पूजा है। 'सिला' की पूजा शिव जी की पूजा है।) कूप–कुआँ। तटा–(तडाग) तालाब।१।

कैसे तरै–कैसे तरें, नहीं तर सकता, पार नहीं जा सकता। सरपर–ज़रूर।१। रहाउ।

कुलखेति–कुरुक्षेत्र (तीर्थ) पर (जाकर)। ग्रहन करै–ग्रहण (के समय का स्नान) करे। अरपै–भेंट करे, दान करे। स्रवनी–कानों से।२।

प्रसाद–भोजन, प्रसाद, ठाकुर को भोग। मंडपि–जगत् में। बिगारि–बिगाड़ कर। सांढै–सवारे। हांढै–भटकता है।३।

कहा–क्यों ? परगटि–प्रगट होता है, खुल जाता है। पाहारा–दुकान, (धोखे की दुकान)। सोधि साधि–अच्छी तरह सोच-विचार कर। 'कहु, रविदास ! सोधि साधि बीचारिआ, पापी निंदकु नरकि सिधारिआ'–अन्वय।४।

अर्थ : सज्जन गुरमुख की निंदा करने वाला मनुष्य (संसार-सागर से) पार नहीं हो सकता, यकीन से जानो, वह हमेशा नरक में ही पड़ा रहता है।१। रहाउ।

यदि कोई मनुष्य अठसठ तीर्थों का स्नान (भी) कर ले, यदि बारह शिवलिंगों की पूजा भी कर ले, यदि (लोगों के भले के लिए) कुएँ, तालाब (आदि) खुदवाए, पर यदि वह (गुरमुखों) की निंदा करता है, तो उस की समस्त मेहनत व्यर्थ हो जाती है।२।

यदि कोई मनुष्य कुरुक्षेत्र में (जाकर) ग्रहण (का स्नान) करे, गहनों सहित अपनी पत्नी (ब्राह्मणों को) दान कर दे, समस्त स्मृतियाँ ध्यान से सुने, पर यदि वह सज्जनों की निंदा करता है तो इन सभी कार्यों का कोई लाभ नहीं।२।

यदि कोई मनुष्य ठाकुरों को कई प्रकार के भोग लगाए, ज़मीन का दान करे, (जिस कारण) संसार में सुशोभित हो जाए, यदि अपना नुकसान

होते हुए भी दूसरों के काम करे, तो भी यदि वह सज्जनों की निंदा करता है, तो कई योनियों में भटकता है।३।

हे संसार के लोगो ! आप (संत की) निंदा क्यों करते हो ?(चाहे ऊपर से कोई धार्मिक कार्य करे, पर यदि मनुष्य संत की निंदा करता है तो सभी धार्मिक कार्य एक धोखा पाखण्ड ही हैं तथा) निंदक की यह धोखे की दुकान प्रकट हो जाती है (उसका भेद खुल जाता है)। हे रविदास ! कह–हमने अच्छी तरह सोच-विचार कर देख लिया है कि संत का निंदक कुकर्मी रहता है तथा नरक में पड़ा रहता है।४।२।११।७।२।४९।

नोट : गोंड राग के शब्दों का विवरण :

	मः ४ –	६	कबीर जी	– ११
	मः ५ –	२२	नामदेव जी	– ७
असटपदी	मः ५ –	१	रविदास जी	– २
	जोड़	२९	जोड़	२०
			कुल जोड़	४९

भाव : गुरमुखों के निंदकों का कोई भी धार्मिक-उद्यम उस निंदक को पाप-मुक्त नहीं कर सकता, अर्थात् उसको कुकर्मों के फल से मुक्त नहीं कर सकता।

१ओं सतिगुरप्रसादि॥

रामकली बाणी रविदास जी की

पड़ीऐ गुनीऐ नामु सभु सुनीऐ, अनभउ भाउ न दरसै॥
लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे, जउ पारसहि न परसै॥१॥
देव, संसै गांठि न छूटै॥
काम क्रोध माइआ मद मतसर,
इन पंचहु मिलि लूटे॥१॥ रहाउ॥
हम बड कबि, कुलीन, हम पंडित, हम जोगी संनिआसी॥
गिआनी गुनी सूर हम दाते,
इह बुधि कबहि न नासी॥२॥
कहु रविदास सभै नही समझसि, भूलि परे जैसे बउरे॥
मोहि अधारु नामु नाराइनु, जीवन प्रान धन मोरे॥३॥१॥

पद अर्थ : पड़ीऐ–पढ़ा जाता है, पढ़ते हैं। गुनीऐ–विचारा जाता है। सभु–सर्वत्र। सुनीऐ–सुनते हैं। भाउ–प्रेम, आकर्षण। अनभउ–(Skt. अनुभव–direct perception) प्रत्यक्ष दर्शन। कंचनु–सोना। हिरन–(Skt. हिरण्य) सोना। पारसहि–पारस को। परसै–स्पृश करे।१।

संसै–संशय की, डर की, सहम की। गांठि–गांठ। न छूटै–नहीं खुलती। मद–अहंकार। मतसर–ईर्ष्या। इन पंचहु–(कामादि) इन पांचों ने। लूटे–(सभी जीव) लूट लिये हैं।१। रहाउ।

कबि–कवि। कुलीन–उच्च कुल वाले। गुनी–गुणवान्। सूर–शूरवीर।२।

सभै–सभी जीव (जिनको कामादि पाँचों ने लूट लिया है)। भूलि परे–भूल गये हैं। मोहि–मुझे। जीवन–जीवन। मोरे–मेरे लिए।३।

अर्थ : हे प्रभु ! काम, क्रोध, माया (का मोह), अहंकार तथा ईर्ष्या इन पाँचों ने मिलकर (सभी जीवों के आत्मिक गुणों को) लूट लिया है। (इसलिए निर्बल हो जाने के कारण जीवों के अन्दर से) सहम की गाँठ नहीं खुलती।१। रहाउ।

हर जगह प्रभु का नाम पढ़ा (भी) जाता है, सुना (भी) जाता है तथा विचारा (भी) जाता है (भाव, सभी जीव प्रभु का नाम पढ़ते हैं, विचार करते हैं, सुनते हैं पर कामादि मन में सहम की गांठ बनी रहने के कारण इनके अन्दर) प्रभु का प्रेम पैदा नहीं होता, प्रभु का दर्शन नहीं होता (दर्शन हो भी कैसे ? कामादि के कारण मन की भावनाओं का प्रभु के साथ स्पृश ही नहीं होता, तथा) जब तक लोहा पारस के साथ छूए न, तब तक यह शुद्ध सोना कैसे बन सकता है ?।१।

(कामादि की लूट के कारण जीवों के अन्दर से) किसी समय भी यह (बनी हुई) समझ नहीं हटती कि हम बड़े कवि हैं, कुलीन हैं, विद्वान हैं, योगी हैं, सन्यासी हैं, ज्ञानवान् हैं, गुणवान् हैं, शूरवीर हैं या दाता हैं (जिस तरफ़ भी जीव गया उसी का गर्व हो गया)।२।

हे रविदास ! कह–(जिनको कामादि ने लूट लिया है, वे) सभी बावरों की तरह भूल रहे हैं तथा (यह) नहीं समझते (कि ज़िंदगी का असल आसरा प्रभु का नाम है), मुझ रविदास के लिए परमात्मा का नाम ही सहारा है, नाम ही मेरा जीवन है, नाम ही मेरा प्राण है, नाम ही मेरा धन है।३।

शब्द का भाव : परमात्मा के नाम का सिमरन ही विकारों के प्रकोप से बचा सकता है।

१ओ सतिगुरप्रसादि ॥

रागु मारू बाणी रविदास जीउ की

ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै॥
गरीब निवाजु गुसईआ मेरा, माथै छत्रु धरै॥१॥ रहाउ॥
जा की छोति जगत कउ लागै, ता पर तूही ढरै॥
नीचह ऊच करै मेरा गोबिंदु, काहू ते न डरै॥१॥
नामदेव कबीरु तिलोचनु, सधना सैनु तरै॥
कहि रविदासु सुनहु रे संतहु,
हरि जीउ ते सभै सरै॥२॥१॥

पद अर्थ : लाल–हे सुन्दर प्रभु ! ऐसी–ऐसी (कृपा)। गरीब निवाजु–ग़रीबों को मान देने वाले। गुसईआ मेरा–मेरा स्वामी। माथै–(ग़रीब के) सिर पर।१। रहाउ।

छोति–छूत। ता पर–उस पर। ढरै–द्रवित होता है, ढलता है, तरस करता है। नीचह–नीच लोगों को। काहू ते–किसी से।१।

सभै–सभी काम। सरै–हो सकते हैं, सम्पूर्ण हो जाते हैं।२।

अर्थ : हे सुन्दर प्रभु ! तेरे बिना ऐसी क्रिया अन्य कौन कर सकता है ? (हे भाई !) मेरा प्रभु ग़रीबों को मान देने वाला है, (ग़रीबों के) सिर पर ही छत्र झुला देता है (भाव, ग़रीब को भी राजा बना देता है)।१। रहाउ।

(जिस मनुष्य को इतना नीच समझा जाता हो कि) जिस की छूत समूह जगत् को लग जाए (भाव, जिस मनुष्य के छूने से अन्य सभी लोग अपने आपको अपवित्र समझने लग जाएं) उस मनुष्य पर (हे प्रभु !) तू ही कृपा करता है। (हे भाई !) मेरा गोबिंद नीच जनों को उच्च बना देता है, वह किसी से डरता नहीं।१।

(प्रभु की कृपा से ही) नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, सधना तथा सैन (आदि भक्त संसार-समुद्र से) पार हो गये। रविदास कहता है–हे संत-जनों ! सुनो, प्रभु सभी कुछ करने में समर्थ है।२।१।

नोट : शब्द 'नीचह' को आमतौर पर लोग 'नीचहु' पढ़ते हैं, ठीक पाठ 'नीचह' है।

नोट : भक्त रविदास जी की गवाही के अनुसार नामदेव जी किसी बीठलु-मूर्ति की पूजा से नहीं, बल्कि परमात्मा की भक्ति की बरकत से पार हुए थे। नामदेव, त्रिलोचन, कबीर तथा सधना–इन चारों के लिए रविदास जी कहते हैं कि 'हरि जीउ ते सभै सरै'।

शब्द का भाव : प्रभु की शरण ही नीच कहलाने वाले लोगों को उच्च बनाती है।

मारू॥

सुखसागर सुरितरु चिंतामनि, कामधेन बसि जा के रे॥
चारि पदारथ असट महा सिधि,
नवनिधि कर तल ता कै॥१॥
हरि हरि हरि न जपसि रसना॥
अवर सभ छाडि बचन रचना॥१॥ रहाउ॥
नाना खिआन पुरान बेद बिधि, चउतीस अछर माही॥
बिआस बीचारि कहिओ परमारथु,
राम नाम सरि नाही॥२॥
सहज समाधि उपाधि रहत होइ, बडे भागि लिव लागी॥
कहि रविदास उदास दास मति,
जनम मरन भै भागी॥३॥२॥१५॥

नोट : रविदास जी का यह शब्द थोड़े-से अन्तर के साथ सोरठि राग में भी है। इसका भाव यह है कि यह शब्द दोनों रागों में गाया जाना

चाहिए। इस शब्द के पद अर्थ देखें सोरठि राग में शब्द नंः ४, रविदास जी का।

अर्थ : (हे पण्डित !) जो प्रभु सुखों का समुद्र है, जिस प्रभु के वश में स्वर्ग के पाँच वृक्ष : चिन्तामणि तथा कामधेनु हैं; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ, आठ बड़ी सिद्धियाँ तथा नौ निधियाँ, ये सभी उसके हाथों की हथेलियों पर हैं।१।

(हे पण्डित !) तू अन्य सभी सारहीन बातें छोड़कर (अपनी) रसना से हमेशा एक परमात्मा का नाम क्यों नहीं जपता ? ।१।रहाउ।

(हे पण्डित !) पुराणों के विभिन्न प्रसंग, वेदों में बताई गई विधियाँ, ये सभी वाक्य रचना ही हैं, (अनुभव पर आधारित ज्ञान नहीं जो प्रभु के चरणों में जुड़ने से हृदय में पैदा होता है)। (हे पण्डित ! वेदों की खोज करने वाले) व्यास ऋषि ने सोच-विचार कर यही परम तत्त्व बताया है कि (इन पुस्तकों के पाठ आदि) परमात्मा के नाम के सिमरन की बराबरी नहीं कर सकते।२।

रविदास कहता है-(हे पण्डित !) बड़े भाग्य से जिस व्यक्ति का ध्यान प्रभु-चरणों में लग जाता है, उसका मन आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है, उसमें कोई विकार पैदा नहीं होता, उस सेवक की बुद्धि (माया के प्रति) निरासक्त हो जाती है तथा जन्म-मरन (भाव, समस्त आयु) के उसके भय नष्ट हो जाते हैं।३।२।१५।

शब्द का भाव : सभी पदार्थों का दाता प्रभु स्वयं है। उसका सिमरन करें, कोई तृष्णा, कोई भूख नहीं रह जायेगी।

१ओं सतिगुरप्रसादि॥

रागु केदारा बाणी रविदास जीउ की

खटु करम कुल संजुगतु है, हरि भगति हिरदै नाहि॥
चरनारबिंद न कथा भावै, सुपच तुलि समानि॥१॥
रे चित चेति चेत अचेत॥
काहे न बालमीकहि देख॥
किसु जाति ते किह पदहि अमरिओ,
राम भगति बिसेख॥१॥ रहाउ॥
सुआन सत्रु अजातु सभ ते, क्रिस्न लावै हेतु॥
लोगु बपुरा किआ सराहै, तीनि लोक प्रवेस॥२॥
अजामलु पिंगुला लुभतु कुंचरु, गए हरि कै पासि॥
ऐसे दुरमति निसतरे, तू किउ न तरहि रविदास॥३॥१॥

पद अर्थ : खटु करम–मनुस्मृति में बताये गये छः कर्म, जो प्रत्येक ब्राह्मण के लिए ज़रूरी हैं।

[अध्यापनमध्यनं यजनं याजनं तथा।

दान प्रतिग्रहश्चैव, षट् कर्माण्यग्रजन्मनः। अध्याय १०.७५]

विद्या पढ़नी तथा पढ़ानी, यज्ञ करना तथा कराना, दान देना तथा लेना। संजुगतु–सहित। चरनारबिंद–चरन+अरबिंद, चरण कमल। सुपच–(श्व+पच) चण्डाल, जो कुत्ते को पका ले। तुलि–बराबर। समानि–जैसा, समान।१।

रे अचेत चित–हे अचेत मन ! काहे न–क्यों नहीं ? पदहि–पद पर। अमरिओ–पहुँचा। बिसेख–विशेषता, वडिआई।१। रहाउ।

सुआन सत्रु–कुत्तों का शत्रु, कुत्ते को मारकर खा जाने वाला।

अजातु–नीच, चण्डाल। हेतु–प्यार। बपुरा–बेचारा। सराहै–सराहना करे।२।

लुभतु–लुबधक, शिकारी। कुंचरु–हाथी। दुरमति–दुर्मति, बुरी बुद्धि वाला।३।

अजामलु–कन्नौज देश का एक दुराचारी ब्राह्मण, जिसने एक वेश्या के साथ विवाह किया था। उस वेश्या के उदर से १० पुत्रों ने जन्म लिया। छोटे पुत्र का नाम नारायण होने के कारण अजामल नारायण का भक्त बन गया, तथा मुक्ति का अधिकारी हो गया।

कुंचरु–हाथी, गज। एक गन्धर्व, जो दैवल ऋषि के श्राप से हाथी बन गया था। वरुण देवता के तालाब में तेंदुए ने इसको ग्रस लिया था। जब निर्बल होकर यह डूबने लगा, तब कमल सूँड में लेकर ईश्वर की आराधना करते हुए इसने सहायता के लिए पुकार की। भगवान ने तेंदुए के बन्धनों से गजराज को मुक्त किया था। यह कथा भागवत के आठवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में है।

पिंगुला–जनकपुरी में एक गणिका रहती थी, जिसका नाम पिंगला था। उसने एक दिन एक सुन्दर जवान देखा, तथा उस पर मुग्ध हो गई पर वह उस गणिका के पास न आया। पिंगला की पूरी रात बेचैनी में बीती। अंत में उसके मन में वैराग्य पैदा हुआ कि यदि ऐसा प्रेम मैं परमेश्वर से करती तो कितना अच्छा फल मिलता। पिंगला परमात्मा के सिमरन में लगकर मुक्त हो गई।

अर्थ : हे मेरे अचेत मन ! प्रभु का सिमरन कर। हे मन ! तू वाल्मीकि की ओर क्यों नहीं देखता ? एक निम्न जाति से बहुत बड़े पद पर पहुँच गया–यह बड़प्पन परमात्मा की भक्ति के कारण ही था।१।रहाउ।

यदि कोई मनुष्य उच्च ब्राह्मण कुल का हो, तथा नित्य छः कर्म करता हो, पर यदि उसके हृदय में परमात्मा की भक्ति नहीं, यदि उसको प्रभु के सुन्दर चरणों की बातें, अच्छी नहीं लगती तो वह चण्डाल के बराबर है, चण्डाल जैसा है।१।

(वाल्मीकि) कुत्तों का शत्रु था, सभी लोगों से चण्डाल था, पर उसने

प्रभु से प्रेम किया। बेचारा जगत् उसकी क्या सराहना कर सकता है ? उसकी शोभा त्रिलोक में फैल गई।२।

अजामल, पिंगला, शिकारी, कुंचर—ये सभी (मुक्त होकर) प्रभु-चरणों में जा पहुँचे। हे रविदास ! यदि ऐसी दुर्मति वाले पार हो गये तो तू (इस संसार-सागर से) क्यों पार न होगा ? ।३।१।

शब्द का भाव : सिमरन का महत्त्व। सिमरन बड़े-बड़े पापियों को तार देता है। सिमरन से हीन मनुष्य ही वास्तविक नीच है।

१ओं सतिगुरप्रसादि॥

भैरउ बाणी रविदास जीउ की घरु २

बिनु देखे उपजै नही आसा॥
जो दीसै सो होइ बिनासा॥
बरन सहित जो जापै नामु॥
सो जोगी केवल निहकामु॥१॥
परचै, रामु रवै जउ कोई॥
पारसु परसै दुबिधा न होई॥१॥ रहाउ॥
सो मुनि, मन की दुबिधा खाइ॥
बिनु दुआरे त्रै लोक समाइ॥
मन का सुभाउ सभु कोई करै॥
करता होइ सु अनभै रहै॥२॥
फल कारन फूली बनराइ॥
फलु लागा तब फूलु बिलाइ॥
गिआनै कारन करम अभिआसु॥
गिआनु भइआ तह करमह नासु॥३॥
घ्रित कारन दधि मथै सइआन॥
जीवत मुकत सदा निरबान॥
कहि रविदास परम बैराग॥
रिदै रामु की न जपसि अभाग॥४॥१॥

नोट : शब्द का मुख्य भाव 'रहाउ' की पंक्ति में हुआ करता है,

बाकी के शब्द में उसकी व्याख्या होती है।

मुख्य भाव : जो मनुष्य प्रभु के नाम का सिमरन करता है, उसका मन प्रभु में लग जाता है; पारस-प्रभु से स्पर्श करने से वह, मानो, सोना हो जाता है।

शेष शब्द में उस सोना बन गये मनुष्य का चित्र अंकित किया है–१. 'निहकामु', वासना रहित हो जाता है; २. दुविधा मिट जाती है तथा वह निर्भय हो जाता है; ३. काम-धन्धे का मोह समाप्त हो जाता है; ४. वह जीवित ही मुक्त हो जाता है।

पंद अर्थ : आसा–(पारस-प्रभु से स्पर्श की) आशा। बरन–वर्णन, प्रभु के गुणों का वर्णन, सिफ़ति-सालाह। सहित–सहित, युक्त। जापै–जप करता है। निहकामु–कामना रहित, वासना रहित।१।

परचै–लग जाता है, अभ्यस्त हो जाता है, विकारों की तरफ़ से हट जाता है। जउ–जब। परसै–छूता है, स्पर्श करता है।१। रहाउ।

खाइ–खा जाता है, समाप्त कर देता है। दुबिधा–दुविधा, मेर-तेर, प्रभु से अलगाव। त्रै लोक–तीनों लोकों में व्यापक परमात्मा में। बिनु दुआरे–जिस प्रभु का दस द्वारों वाला शरीर नहीं है। सभु कोई–प्रत्येक जीव। करता होइ–(नाम-सिमरन करने वाला मनुष्य) करतार (परमात्मा) का रूप हो जाता है। अनभै–भय रहित अवस्था में।२।

कारन–के लिए, कारण। बनराइ–वनस्पति। फूली–फूलती है, विकसित होती है। बिलाइ–दूर हो जाता है। करम–दुनिया के काम-धन्धे। अभिआसु–बार-बार करना। करम अभिआसु–दुनिया के रोज़ाना के काम धन्धे। गिआनै कारन–ज्ञान के लिए, ऊँचे जीवन की सूझ के लिए, जीवन का सही मार्ग ढूँढने के लिए। तह–उस अवस्था में पहुँच कर। करमह नासु–कर्मों का नाश, काम-धन्धों के मोह का नाश।३।

घ्रित–घी। दधि–दहीं। मथै–बिलोती है। सइआन–सयानी स्त्री। निरबान–वासना रहित। की न–क्यों नहीं ? अभाग–हे भाग्यहीन।४।

अर्थ : जब कोई मनुष्य परमात्मा के नाम का सिमरन करता है तो

उसका मन प्रभु में लग जाता है, जब पारस प्रभु का वह स्पर्श करता है (वह मानो सोना हो जाता है) तो उसकी मेर-तेर समाप्त हो जाती है।१। रहाउ।

(पर पारस-प्रभु के चरण छूने आसान काम नहीं है, क्योंकि वह इन आँखों से दिखाई नहीं देता, तथा) उसको देखे बिना (उस पारस-प्रभु के चरण छूने की) इच्छा पैदा नहीं होती, (इस दृश्य संसार के साथ ही मोह बना रहता है) तथा यह जो कुछ दिखाई देता है यह सब नश्वर है। जो मनुष्य प्रभु के गुण गाता है तथा प्रभु का नाम जपता है, केवल वही वास्तविक योगी है तथा वह कामना रहित हो जाता है।१।

(नाम-सिमरन करने वाला) वह मनुष्य (वास्तविक) ऋषि है (नाम की बरकत से) अपने मन की मेर-तेर वाली भावना मिटा देता है तथा उस प्रभु में समाया रहता है जो त्रिलोक में व्यापक है तथा जिसका कोई विशेष शरीर नहीं है। (संसार में) प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने मन के स्वभाव के अनुकूल कार्य करता है (अपने मन के पीछे चलता है) पर नाम-सिमरन करने वाला मनुष्य (अपने मन के पीछे चलने के स्थान पर नाम की बरकत से) परमात्मा का रूप हो जाता है तथा उस अवस्था में टिका रहता है जहाँ कोई डर भय नहीं।२।

(जगत् की समस्त) वनस्पति फल देने के लिए फूलती है, जब फल लगता है, फूल दूर हो जाता है। इसी तरह दुनिया के रोज़ाना के कार्य ज्ञान के लिए हैं (प्रभु के सामीप्य को प्राप्त करने के लिए हैं, उच्च जीवन की सूझ के लिए हैं)। जब उच्च जीवन की सूझ पैदा हो जाती है तब उस अवस्था में पहुँच कर किरतकार का (माया सम्बन्धी उधम का) मोह मिट जाता है।३।

नोट : पाठक जन 'रहाउ' की पंक्ति का ध्यान रखें। समूह शब्द में उस जीवन का विस्तार है जो नाम-सिमरन करने से बनता है, इस केन्द्रिय विचार के इर्द-गिर्द ही समूह शब्द ने रहना है। किसी कर्म-काण्ड का कोई ज़िक्र रविदास जी ने 'रहाउ' की पंक्ति में नहीं किया। इस पद नंः ३ में भी यदि 'करम' शब्द का अर्थ 'कर्म काण्ड' किया जाए तो यह बड़ी असम्बन्धित

बात होगी।

समझदार स्त्री घी के लिए दहीं बिलोती है (वैसे ही जो मनुष्य नाम जपकर प्रभु-चरणों में लीन होता है, वह जानता है कि दुनिया का जीवन निर्वाह, दुनिया का कार्य प्रभु-चरणों में जुड़ने के लिए ही है। इसलिए वह मनुष्य नाम की बरकत से) माया के जीविका-सम्बन्धित कार्य करता हुआ भी मुक्त होता है तथा हमेशा वासना रहित रहता है। रविदास इस सबसे ऊँचे वैराग्य (की प्राप्ति) की बात बताता है। हे भाग्यहीन ! प्रभु तेरे हृदय में ही है, तू उसको क्यों नहीं याद करता ?।४।१।

नोट : जब भी किसी कवि की किसी रचना बारे कोई शक हो तो उसको समझने का सही तरीका यही हो सकता है कि उस गुत्थी को उसी की शेष अन्य रचना में से समझा जाए। कवि जहाँ अपनी बोली को संवारता है, सुसज्जित करता है, वहीं वह पुराने शब्दों, पुराने मुहावरों तथा पुराने प्रयुक्त दृष्टान्तों का नए ढंग से भी प्रयोग करता है तथा प्रयोग कर सकता है। गुरु गोबिंद सिंघ जी द्वारा शब्द 'भगौति' के प्रयोग करने से कई लोग इस भटकन में पड़ गये कि सतिगुरु जी ने देवी-पूजा या शस्त्र-पूजा की। पर जब इस शब्द को उनकी अपनी ही रचना में प्रयुक्त हुए को ध्यान से देखा जाए तो स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष हो जाता है कि शब्द 'भगौति' का प्रयोग उन्होंने परमात्मा के लिए किया है। रामकली राग में दी गई बाणी 'सदु' से कई लोग घबराते थे कि इसमें कर्म-काण्ड करने की आज्ञा दी गई है पर यह ग़लत धारणा ही थी (पढ़ें मेरी पुस्तक *सदु सटीक*)। यह बाणी उन महापुरुषों की है जो हमसे दूर उच्च चोटी पर थे। उच्च मण्डलों में विचरण कर रहे थे। इसको समझने के लिए इसके साथ जुड़ना पड़ेगा, माया लिप्त मन को थोड़ा रोककर इधर पर्याप्त समय देना पड़ेगा, तो ही उनकी गहराई में पहुँचने की आशा हो सकती है।

वेदान्ती लोगों ने यह प्रचार किया कि यह जगत् मिथ्या है, वास्तव में इस जगत् का कोई अस्तित्व ही नहीं है। माया का पर्दा होने के कारण जीव को यह संदेह हो गया है कि जगत् की कोई हस्ती है, कोई अस्तित्व

है। उन्होंने यह बात समझाने के लिए रस्सी तथा साँप का दृष्टान्त दिया कि अन्धेरे के कारण रस्सी को साँप समझा गया, असल में साँप कहीं था ही नहीं। रविदास जी ने भी इस दृष्टान्त का प्रयोग कर लिया पर इससे यह अभिप्राय नहीं है कि रविदास जी वेदान्ती थे। यह दृष्टान्त वेदान्तियों की जायदाद नहीं हो गया। देखें राग सोरठि, शब्द, 'जब हम होते'। कर्म-काण्डियों ने फूल तथा फल के दृष्टान्त का प्रयोग किया, रविदास जी ने भी इसको प्रयुक्त कर लिया, पर इसका यह मतलब नहीं निकल सकता कि रविदास जी कर्म-काण्डी थे। रविदास जी कौन-से उच्च कुल के ब्राह्मण थे कि किसी कर्म-काण्ड से चिपके रहते ? न जनेऊ पहनने का अधिकार, न मन्दिर में प्रवेश करने की आज्ञा, न किसी श्राद्ध के समय ब्राह्मण ने उनके घर का खाना, न संध्या तर्पण, गायत्री आदि को उन्हें कोई अधिकार। फिर वह कौन-सा कर्म-काण्ड था जिसका चाव रविदास जी को हो सकता था।

रविदास जी ने इस शब्द में नाम-सिमरन करने वाले व्यक्ति के उच्च-जीवन का उल्लेख किया है।

इसी राग में दिया गया गुरु अमरदास जी का निम्नलिखित शब्द रविदास जी के इस शब्द का आनन्द लेने के लिए बहुत सहायक होगा।

भैरउ महला ३॥

सो मुनि, जि मन की दुबिधा मारे॥
दुबिधा मारि ब्रहमु बीचारे॥१॥
इसु मन कउ कोई खोजहु भाई॥
मनु खोजत नामु नउनिधि पाई॥१॥ रहाउ॥
मूलु मोहु करि करतै जगतु उपाइआ॥
ममता लाइ भरमि भुोलाइआ॥२॥
इसु मन ते सभ पिंड पराणा॥
मन कै वीचारि हुकमु बुझि समाणा॥३॥
करमु होवै गुरु किरपा करै॥
इहु मनु जागै इसु मन की दुबिधा मरै॥४॥

मन का सुभाउ सदा बैरागी॥
सभ महि वसै अतीतु अनरागी॥५॥
कहत नानकु जो जाणै भेउ॥
आदि पुरखु निरंजन देउ॥६॥५॥

जिस मनुष्य पर प्रभु की कृपा हो उस पर गुरु कृपा करता है, उसका मन माया के मोह से जाग जाता है। जो बात रविदास जी ने 'करमह नासु' में संकेत मात्र बताई है, वह गुरु अमरदास जी ने दूसरे पद से पाँचवे पद तक खुले शब्दों में समझा दी है कि 'करमह नासु' का भाव है 'मोह ममता का नाश'।

नोट : क्या इन दोनों शब्दों को एक साथ रखकर पढ़ने से यह बात दृढ़ नहीं हो जाती कि गुरु अमरदास जी का यह शब्द भक्त रविदास जी के शब्द के संबंध में ही है ? दूसरे शब्दों में यह कह लें कि इस शब्द का उच्चारण करने के समय गुरु अमरदास जी के पास भक्त रविदास जी का शब्द मौजूद था। दोनों शब्दों के कई लफ़्ज़ों तथा पंक्तियों की सांझ अकस्मात् ही नहीं बन गई। यह विचार बिल्कुल ग़लत है कि भक्तों की बाणी गुरु अर्जन देव जी ने एकत्र की थी। सतिगुरु नानक देव जी ने पहली 'उदासी' के समय बनारस जाकर भक्त रविदास जी के सभी शब्द लिख लिए। अपनी बाणी के साथ सम्भाल कर ये शब्द गुरु नानक देव जी ने गुरु अंगद देव जी को दिये। उनसे यह समूह बाणी गुरु अमरदास जी को मिली।

शब्द का भाव : सिमरन का महत्त्व–सिमरन की बरकत से मनुष्य माया के मोह वाला स्वभाव छोड़ देता है, वासना-रहित हो जाता है।

१ओं सतिगुरप्रसादि॥

बसंतु बाणी रविदास जी की

तुझहि सुझंता कछू नाहि॥
पहिरावा देखे ऊभि जाहि॥
गरबवती का नाही ठाउ॥
तेरी गरदनि ऊपरि लवै काउ॥१॥
तू कांइ गरबहि बावली॥
जैसे भादउ खूंबराजु, तू तिस ते खरी उतावली॥१॥ रहाउ॥
जैसे कुरंक नही पाइओ भेदु॥

तनि सुगंध, ढूढै प्रदेसु॥
अप तन का जो करे बीचारु॥
तिसु नही जम कंकरु करे खुआरु॥२॥
पुत्र कलत्र का करहि अहंकारु॥
ठाकुरु लेखा मंगनहारु॥
फेड़े का दुखु सहै जीउ॥
पाछे किसहि पुकारहि पीउ पीउ॥३॥
साधू की जउ लेहि ओट॥
तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि॥
कहि रविदासु जो जपै नामु॥
तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु॥४॥१॥

पद अर्थ : तुझहि–तुझे। पहिरावा–(शरीर की) पोशाक। ऊभि जाहि–अकड़ती है, गर्व करती है। गरबवती–घमंडी। ठाउ–स्थान। गरदनि–गर्दन। लवै काउ–कौआ लेता है।१।

कांइ–क्यों ? किस लिए ? गरबहि–अहंकार करती है। खूंबराजु–बड़ी खूंब। खरी–अधिक। उतावली–जल्दी जाने वाली, उतावली।१। रहाउ।

कुरंक–हिरण। तनि–शरीर में। सुगंध–सुगन्धि। अप–अपना। जम कंकरु–(Skt. यम किंकर) यमदूत।२।

क़लत्र–स्त्री। फेड़े–किये (मन्द) कर्म। पाछे–(प्राण के निकल जाने के) बाद। पीउ–प्यारा। पुकारहि–तू पुकारेगी।३।

साधू–गुरु। ओट–सहारा, आश्रय। कोटि–करोड़। जोनि कामु–योनियों से मतलब।४।

अर्थ : हे मेरी बांवरी काया ! तू क्यों गर्व करती है ? तू तो उस खूंब से भी शीघ्र नष्ट हो जाने वाली है जो भाद्रपद में उगती है।१। रहाउ।

(हे काया !) तू अपना ठाठ (पोशाक आदि) देखकर गर्व करती है, (इस गर्व में) तुझे कुछ भी सूझ नहीं रही। (देख) गर्विता का कोई स्थान नहीं (होता), तेरे बुरे दिन आए हुए हैं (कि तू झूठा गर्व कर रही है)।१।

(हे काया !) जैसे हिरण को यह भेद मालूम नहीं होता कि कस्तूरी की सुगन्ध उसके अपने शरीर में (से आती) है, पर वह प्रदेश में ढूँढता फिरता है (वैसे ही तुझे यह समझ नहीं कि सुखों का मूल-प्रभु तेरे अपने अन्दर है)। जो जीव अपने शरीर का विचार करता है (कि यह सदा-स्थिर रहने वाला नहीं), उसको यमदूत परेशान नहीं करता।२।

(हे काया !) तू पुत्र तथा पत्नी का मान (अहंकार) करती है (तथा प्रभु को भुला बैठी है, याद रख) मालिक-प्रभु (किये कर्मों का) लेखा मांगता है (भाव,) जीव अपने किये मन्द-कर्मों के कारण दुःख सहता है। (हे काया ! प्राणों के निकल जाने के बाद) तू किसको प्यारा, प्यारा कहकर पुकारेगी।३।

(हे काया !) यदि तू गुरु का आश्रय ले, तेरे करोड़ों किये पाप सभी

के सभी नष्ट हो जाएं। रविदास कहता है–जो मनुष्य नाम जपता है, उसकी (निम्न) जाति समाप्त हो जाती है, उसका जन्म-मरन मिट जाता है, योनियों से उसका मतलब (सम्बन्ध) नहीं रहता।४।१।

भाव : शरीर आदि का गर्व झूठा है। यहाँ सदैव नहीं बैठे रहना।

१ओं सतिगुरप्रसादि॥

मलार बाणी भगत रविदास जी की

नागर जनां, मेरी जाति बिखिआत चंमारं॥
रिदै राम गोबिंद गुन सारं॥१॥ रहाउ॥
सुरसरी सलल क्रित बारुनी रे,
संत जन करत नही पानं॥
सुरा अपवित्र नत अवर जल रे,
सुरसरी मिलत नहि होइ आनं॥१॥
तर तारि अपवित्र करि मानीऐ रे,
जैसे कागरा करत बीचारं॥
भगति भगउतु लिखीऐ तिह ऊपरे,
पूजीऐ करि नमसकारं॥२॥
मेरी जाति कुट बांढला ढोर ढोवंता,
नितहि बानारसी आस पासा॥
अब बिप्र परधान तिहि करहि डंडउति,
तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा॥३॥१॥

पद अर्थ : नागर–नगर के। बिखिआत–(विख्यात well-known, avowed) प्रसिद्ध, जानी-मानी। रिदै–हृदय में। सारं–मैं सम्भालता हूँ, मैं याद करता हूँ।१। रहाउ।

सुरसरी–(Skt. सुरसरित्) गंगा। सलल–पानी। क्रित–बनाया हुआ। बारुनी–(Skt. वारुणी) शराब। रे–हे भाई ! पानं नही करत–नहीं पीते। सुरा–शराब। नत–चाहे। अवर–अन्य। आनं–अन्य दूसरे।१।

तर–वृक्ष। तर तारि–ताड़ के वृक्ष जिनमें से नशा देने वाला रस निकलता है। कागरा–काग़ज़। करत बीचारं–विचार करते हैं।२।

कुट बांढला–(चमड़ा) काटने तथा कूटने वाला। ढोर–मृत पशु। नितहि–हमेशा, नित्य। बिप्र–ब्राह्मण। तिहि–उसको। डंडउति–नमस्कार। नाम सरणाइ–नाम की शरण में। तिहि–उस कुल में।३।

अर्थ : हे नगर के लोगो ! यह बात तो प्रसिद्ध है कि मेरी जाति चमार है (जिसको आप लोग निम्न जाति समझते हो, पर) मैं अपने हृदय में प्रभु के गुण याद करता रहता हूँ (इसलिए मैं नीच नहीं रह गया)।१। रहाउ।

हे भाई ! गंगा के (भी) पानी से बनी हुई शराब गुरमुख लोग नहीं पीते (भाव, वह शराब ग्रहण-योग्य नहीं, इसी तरह अहंकार भी अवगुण है चाहे वह उच्च पवित्र जाति का किया जाए), पर हे भाई ! अपवित्र शराब या चाहे अन्य (गन्दे) जल भी हों, वह गंगा (के पानी) में मिलकर (उससे) भिन्न (अलग) नहीं रह जाते (इसी तरह निम्न कुल का व्यक्ति भी परम पवित्र प्रभु में जुड़कर उससे अलग नहीं रह जाता)।१।

हे भाई ! ताड़ के वृक्ष अपवित्र माने जाते हैं, उसी तरह ही उन वृक्षों से बने हुए काग़ज़ के बारे में लोग विचार करते हैं (भाव, उन काग़ज़ों को भी अपवित्र मानते हैं), पर जब प्रभु की सिफ़ति-सालाह उन पर लिखी जाती है तो उनके आगे सिर झुकाकर उनकी पूजा की जाती है।२।

मेरी जाति के लोग (चमड़ा) कूटने तथा काटने वाले बनारस के आस पास (रहते हैं तथा) नित्य मृत पशु उठाते हैं, पर (हे प्रभु ! उस कुल में जन्म लेने वाला) तेरा सेवक रविदास तेरे नाम की शरण में आया है। उसको अब बड़े-बड़े ब्राह्मण नमस्कार करते हैं।३।१।

नोट : इस शब्द की 'रहाउ' की पंक्ति में रविदास जी लिखते हैं–'मैं राम के गुण सम्भालता हूँ, मैं गोबिंद के गुण सम्भालता हूँ, पर यदि अवतार-पूजा के दृष्टिकोण से देखें तो 'राम' श्री राम चन्द्र जी का नाम है तथा 'गोबिंद' श्री कृष्ण जी का नाम है। इन दोनों शब्दों के एक साथ प्रयोग से यह साफ़

प्रत्यक्ष है कि रविदास जी किसी विशेष अवतार के उपासक नहीं थे। वह उस परमात्मा के भक्त थे जिसके लिए ये सभी शब्द प्रयुक्त किए जा सकते हैं तथा सतिगुरु जी ने भी प्रयुक्त किए हैं।

भाव : सिमरन निम्न समझे जाने वालों को भी ऊँचा कर देता है।

मलार॥

हरि जपत तेऊ जनां पदम कवलासपति,
तास सम तुलि नही आन कोऊ॥
एक ही एक अनेक होइ बिसथरिओ,
आन रे आन भरपूरि सोऊ॥ रहाउ॥
जा कै भागवतु लेखीऐ, अवरु नही पेखीऐ,
तास की जाति आछोप छीपा॥
बिआस महि लेखीऐ, सनक महि पेखीऐ,
नाम की नामना सपत दीपा॥१॥
जा कै ईदि बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहि,
मानीअहि सेख सहीद पीरा॥
जा कै बाप वैसी करी, पूत ऐसी सरी,
तिहू रे लोक परसिध कबीरा॥२॥
जा के कुटंब के ढेढ सभ ढोर ढोवंत फिरहि,
अजहु बंनारसी आस पासा॥
आचार सहित बिप्र करहि डंडउति,
तिन तनै रविदास दासान दासा॥३॥२॥

पद अर्थ : तेऊ–वही मनुष्य। जनां–(प्रभु के) सेवक। पदम कवलासपति–(पद्मिपति, कमलापति) पदमापति, कमलापति। पदमा–लक्ष्मी, माया। कमला–लक्ष्मी, माया। पदमापति–परमात्मा। कवलासपति–परमात्मा, माया का पति। तास सम–उस प्रभु के समान। तास तुलि–उस परमात्मा

के तुल्य। कोऊ आन–कोई अन्य। होइ–होकर, बनकर। बिसथरिओ–व्यापक, फैला हुआ। रे–हे भाई ! आन आन–(Skt. अयन अयन) घर घर में, घट घट में। सोऊ–वही प्रभु। रहाउ।

जा कै–जिस के घर में। भागवतु–परमात्मा की सिफ़ति-सालाह। अवरु–(प्रभु के बिना) कोई अन्य। आछोप–अछोह, अछूत। छीपा–छींबा। पेखीऐ–देखने में आता है। नामना–नाम, बड़प्पन। सपत दीपा–सातों द्वीपों में, समूह संसार में।१।

जा कै–जिस की कुल में। बकरीदि–वह ईद जिसमें गाय की कुर्बानी देते हैं (बकर–गाय)। बधु करहि–वध करते हैं, कुर्बानी देते हैं। मानीअहि–माने जाते हैं, पूजे जाते हैं। जा कै–जिसके ख़ानदान में। बाप–बाप दादे, बड़ों ने। ऐसी सरी–ऐसी बन आई, ऐसी हो सकी। तिहू लोक–तीनों ही लोकों में, समूह जगत् में। परसिध–प्रसिद्ध।२।

ढेढ–निम्न जाति के व्यक्ति। अजहु–अब तक। आचार–कर्म-काण्ड। आचार सहित–कर्म-काण्डी, शास्त्रों की मर्यादा पर चलने वाले। तिन तनै–उनके पुत्र (रविदास) को। दासान दासा–प्रभु के दासों का दास।३।

अर्थ : जो मनुष्य माया के पति परमात्मा का सिमरन करते हैं, वे प्रभु के (अनन्य) सेवक बन जाते हैं, उनको उस प्रभु के समान, उस प्रभु के बराबर का, कोई अन्य नहीं दिखाई देता। (इसलिए वह किसी का दबाव नहीं मानते), हे भाई ! उनको एक परमात्मा ही अनेक रूपों में व्यापक घट घट में भरपूर दिखाई देता है। रहाउ।

जिस (नामदेव) के घर में प्रभु की सिफ़ति-सालाह लिखी जा रही है, (प्रभु के नाम के बिना) कुछ अन्य दिखाई नहीं देता (उच्च जाति वालों के लिए) उसकी जाति छीपा है तथा वह अछूत है (पर उसकी प्रशंसा तीनों लोकों में हो रही है); व्यास (की धर्म पुस्तक) में लिखा मिलता है, सनक (आदि की पुस्तक) में भी देखने में आता है कि हरि-नाम की प्रशंसा समूह संसार में होती है।१।

(*नोट :* क्योंकि यह बहस ऊँची जाति वालों के साथ है, इसलिए

उन्होंने अपने ही घर में से व्यास और सनक आदि का हवाला दिया है। रविदास जी स्वयं इनके श्रद्धालु नहीं हैं।)

हे भाई ! जिस (कबीर) की जाति के लोग (मुसलमान बनकर) ईद बकरीद के समय (अब) गायों को हलाल करते हैं तथा जिनके घरों में अब शेख़ों, शहीदों तथा पीरों को माना जाता है, जिस (कबीर) की जाति के बड़ों ने यह कर दिखाया, उनकी ही जाति में पैदा हुए पुत्र से ऐसी बन आई (कि मुसलमानी हुकूमत के दबाव से निडर रहकर हरि-नाम सिमर कर) समूह संसार में प्रसिद्ध हो गया।२।

जिसके ख़ानदान के नीच लोग बनारस के आस-पास (बसते हैं तथा) अब तक मृत पशु ढोते हैं, उनके कुल में पैदा हुए पुत्र रविदास को जो प्रभु के दासों का दास बन गया है, शास्त्रों की मर्यादा के अनुसार चलने वाले ब्राह्मण नमस्कार करते हैं।३।२।

नोट : फ़रीद जी तथा कबीर जी की समस्त बाणी पढ़कर देखें, एक बात स्पष्ट दिखाई देती है। फ़रीद जी प्रत्येक स्थान पर मुसलमानी शब्द प्रयुक्त करते हैं—मलकुलमौत, पुरसलात(=पुलसिरात), अकलि, लतीफ़, गिरीवान, मरग आदि सभी मुसलमानी शब्द ही हैं, विचार भी इसलाम वाले ही दिए हैं, जैसे, 'मिटी पई अतोलवी कोइ न होसी मितु'; यहां मुर्दे को दबाने की ओर संकेत है। पर कबीर जी की बाणी पढ़ें, सभी शब्द हिन्दुओं वाले हैं, सिर्फ़ वहाँ ही मुसलमानी शब्द मिलेंगे, जहाँ किसी मुसलमान के साथ बहस है। परमात्मा के लिए आमतौर पर 'उन्हीं नामों का प्रयोग किया है जो हिन्दू लोग अपने अवतारों के लिए प्रयोग करते हैं तथा जो नाम सतिगुरु जी ने भी प्रयुक्त किए हैं—पीताम्बर, राम, हरि, नाराइन, सारिंगधर, ठाकुर इत्यादि।

इस उपर्युक्त विचार से यह अनुमान लग सकता है कि फ़रीद जी मुसलमानी घर तथा मुसलमानी विचारों में पले थे, कबीर जी हिन्दू घर तथा हिन्दू सभ्यता में। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि फ़रीद जी

मुसलमान थे तथा कबीर जी हिन्दू। हां, हिन्दू कुरीतियों तथा हिन्दू कुरस्मों का उन्होंने दिल खोलकर खण्डन किया है, इससे भी यही स्पष्ट होता है कि हिन्दू घर में पैदा होने तथा पलने के कारण कबीर जी हिन्दू रस्मों तथा मर्यादा को अच्छी तरह जानते थे।

रविदास जी के इस शब्द के दूसरे पद से कई सज्जन भारी टपला खा रहे हैं कि कबीर जी मुसलमान थे। पर आसा राग में कबीर जी का ही शब्द पढ़कर देखें, वे लिखते हैं :

सकति सनेहु करि सुंनति करीऐ, मै न बदउगा भाई॥
जउ रे खुदाइ मोहि तुरकु करैगा, आपन ही कटि जाई॥२॥
सुंनति कीए तुरकु जे होइगा, अउरति का किआ करीऐ॥
अरध सरीरी नारि न छोडै, ता ते हिंदू ही रहीऐ॥३॥

यहाँ स्पष्ट है कि कबीर जी की सुंनत नहीं हुई थी, यदि वह मुसलमान घर में पलते तो छोटी आयु में ही माँ-बाप सुंनत करा देते, जैसे मुसलमानों की शरह कहती है। कबीर जी मुसलमानों के पक्ष का ज़िक्र करते हुए घर की साथिन के लिए मुसलमानी शब्द 'अउरति' प्रयुक्त करते हैं पर अपना पक्ष बताते समय हिन्दू-शब्द 'अरध सरीरी नारि' प्रयोग करते हैं।

पर, क्या रविदास जी ने कबीर को मुसलमान बताया है ? नहीं। ध्यान से पढ़कर देखें। 'रहाउ' की पंक्ति में रविदास जी उन मनुष्यों की आत्मिक अवस्था का वर्णन करते हैं जो हरि-नाम का सिमरन करते हैं। कहते हैं--उनको प्रत्येक स्थान पर प्रभु ही दिखाई देता है, उनको प्रभु ही सबसे बड़ा दिखाई देता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि वे निडर तथा प्रभु के साथ एक रूप हो जाते हैं। आगे नामदेव जी का, कबीर जी का तथा अपना उदाहरण देते हैं—हरि-नाम की बरकत से नामदेव जी की शोभा वैसी हुई जैसी सनक तथा व्यास जैसे ऋषि लिख गये। कबीर जी इसलामी राज्य के दबाव से निडर रहकर नाम-सिमरन करने से प्रसिद्ध हुए, अपनी कुल

के अन्य जुलाहों के समान मुसलमान नहीं बने, हरि-नाम की बरकत ने ही रविदास जी को इतना ऊँचा बनाया कि उच्च कुल के ब्राह्मण चरण स्पर्श करते रहे।

सतिगुरु जी ने फ़रीद जी को 'शेख' लिखा है, शब्द 'शेख' मुसलमानी है पर कबीर जी को 'भक्त' लिखते हैं।

इसलिए, रविदास जी के इस शब्द से यह अनुमान लगाना कि कबीर जी मुसलमान थे, भारी टपला खाने वाली बात है।

भाव : सिमरन निम्न समझे जाने वालों को उच्च बना देता है।

१ओ सतिगुरप्रसादि॥

मलार॥

मिलत पिआरो प्राननाथु, कवन भगति ते॥
साध संगति पाई परम गते॥ रहाउ॥
मैले कपरे कहा लउ धोवउ॥
आवैगी नीद कहा लगु सोवउ॥१॥
जोई जोई जोरिओ सोई सोई फाटिओ॥
झूठे बनजि उठि ही गई हाटिओ॥२॥
कहु रविदास भइओ जब लेखो॥
जोई जोई कीन्हो सोई सोई देखिओ॥३॥१॥३॥

पद अर्थ : प्रान नाथु–प्राणों का स्वामी। कवन भगति ते–अन्य कौन-सी भक्ति से ? अन्य किस तरह की भक्ति करने से ? भाव, किसी अन्य तरह की भक्ति से नहीं। परम गते–सबसे उच्च आत्मिक अवस्था।रहाउ।

कहा लउ–कब तक ? भाव, अब नहीं करूँगा। मैले कपरे धोवउ–मैं दूसरों के मैले कपड़े धोऊँगा, मैं दूसरों की निन्दा करूँगा। आवैगी.....सोवउ–कहा लगु आवैगी नीद कहा लगु सोवउ–कब तक नींद आएगी तथा कब तक सोऊँगा ? न अज्ञानता की नींद आयेगी तथा न ही सोऊँगा।१।

जोई जोई जोरिओ–जो कुछ मैंने जोड़ा था, जितनी मन्दकर्मों की कमाई की थी। सोई सोई–वह समूह (लेखा)। झूठे बनजि–झूठे व्यापार में (लगकर जो दुकान बनाई थी)।२।

कहु–कह। रविदास–हे रविदास! भइओ जब लेखो–(साध-संगति

में) जब (मेरे कृत कर्मों का) लेखा हुआ, साध-संगति में जब मैंने अपने ऊपर नज़र डाली।३।

अर्थ : साध-संगति में पहुँचकर मैंने सबसे ऊँची आत्मिक अवस्था प्राप्त कर ली है, (नहीं तो) प्राणों का स्वामी प्यारा प्रभु किसी अन्य तरह की भक्ति से नहीं मिल सकता था। रहाउ।

(साध-संगति की बरकत से) अब मैंने पर-निन्दा करनी छोड़ दी है, (सत्संग में रहने के कारण) न मुझे अज्ञानता की नींद आएगी तथा न ही मैं सोऊँगा (भाव सचेत रहूँगा)।१।

(साध-संगति में आने से पहले) मैंने जितनी मन्द-कर्मों की कमाई की थी (सत्संग में आकर) उस सभी का लेखा समाप्त हो गया है, झूठे व्यापार में (लगकर मैंने जो दुकान डाली हुई थी, साध-संगति की कृपा से) वह दुकान ही उठ गई है।२।

(यह परिवर्तन कैसे आया ?) हे रविदास ! कह–(साध-संगति में आकर) जब मैंने अपने पर दृष्टि डाली तो जो-जो कर्म मैंने किया हुआ था, वह प्रत्यक्ष दिखाई दे गया (तथा मैं मन्द-कर्मों से लज्जित होकर इनसे हट गया)।३।३।

शब्द का भाव : साध-संगति ही एक ऐसा स्थान है जहाँ मन उच्च-अवस्था में पहुँच सकता है तथा पर-निंदा, अज्ञानता, झूठ आदि विकारों को त्याग कर इनका अस्तित्व ही समाप्त कर सकता है।

●